जैनधर्म : प्राचीनतम जीवित धर्म

Hindi Translation of the English Book
"Jainism : The Oldest Living Religion"

लेखक
डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन

अनुवादक
पुलक गोयल
वरिष्ठ शोध अध्येता
श्री दिगम्बर जैन आचार्य संस्कृत महाविद्यालय
जयपुर

प्रकाशक
धर्मोदय साहित्य प्रकाशन
सागर (म.प्र.)

कृति	:	जैनधर्म : प्राचीनतम जीवित धर्म
लेखक	:	डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन
अनुवादक	:	पुलक गोयल
संस्करण	:	प्रथम (हिन्दी संस्करण) सितम्बर, 2011
ISBN	:	978-81-910547-9-8
आवृत्ति	:	1100
मूल्य	:	20/-
प्राप्ति स्थान	:	धर्मोदय साहित्य प्रकाशन बाहुबली कॉलोनी, सागर (म. प्र.) 094249-51771 dharmodayat@gmail.com
मुद्रक	:	जयपुर प्रिंटिंग सेंटर, जयपुर

प्रकाशकीय

जैनधर्म और दर्शन पौराणिक मान्यताओं के अनुसार अनादि-कालीन है। इतिहासविदों ने उपलब्ध आधुनिक जानकारियों के आधार से जैनधर्म की प्राचीनता को सिद्ध किया है। जैनधर्म की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में कई भ्रामक तथ्यों का प्रचार होता रहा है।

इन मिथ्या विचारों का प्रामाणिक निराकरण डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन ने अपनी लघु पुस्तिका "Jainism : The Oldest Living Religion" में किया है। पार्श्वनाथ विद्यापीठ, बनारस से सन् 1951 एवं 1988 में इस कृति का प्रकाशन दो बार हो चुका है।

इस पुस्तिका का हिन्दी भाषा में अनुवाद करके श्री पुलक गोयल ने जैन इतिहास को पुनः प्रचलित करने का प्रयास किया है। जैनदर्शन के प्रारम्भिक विद्यार्थियों से लेकर विद्यानुरागी विद्वत् समुदाय तक के लिए यह संग्रहणीय है।

इस कृति को प्रकाशित करते हुए हमें प्रसन्नता हो रही है। आशा है कि यह श्रम अपने उद्देश्यों में सफल होगा और युवा अनुवादक प्राच्य विद्याओं के अध्ययन-अध्यापन और अनुसंधान से समाज को लाभान्वित करते रहेंगे।

प्रकाशक

जैनधर्म : प्राचीनतम जीवित धर्म

मानव सभ्यता के आरम्भ से ही भारत ने राष्ट्रों की आध्यात्मिक माता होने का अपना कर्तव्य सदा निभाया है। डा''क्टर एस. सी. विद्याभूषण कहते हैं– ''यदि भारत अपनी आध्यात्मिक और दार्शनिक विकास के लिए विश्व में अद्वितीय है तो कोई भी इंकार नहीं कर सकता कि इसका श्रेय जैनों को ब्राह्मणों और बौद्धों से कम नहीं है।'' अन्य विद्वानों के समान वे भी इस दृष्टिकोण को मानते हैं कि ''जैनधर्म प्राचीनतम और महानतम धर्मों में से एक है।'' सर सन्मुख शेट्टी कहते हैं– ''जैनधर्म की विशालता के बारे में कुछ भी कहना मेरी क्षमता से परे है। भारतीय संस्कृति को जैनों का योगदान अद्वितीय है। मेरे इस कथन को प्रमाणित करने के लिए मैंने पर्याप्त रूप से पढ़ा है। मैं व्यक्तिगत रूप से मानता हूँ कि यदि भारत पर केवल जैनधर्म की पकड़ मजबूत होती, तो सम्भवतः हमारे पास अधिक सङ्गठित भारत और निश्चित रूप से वर्तमान से विशाल भारत होता।'' धर्म की दृष्टि से देखने पर उच्चतम आदर्शों को समझना ही जैनधर्म का मुख्य उद्देश्य रहा है, जिसे व्यक्ति की भौतिक और नैतिक प्रकृति अपने अन्तिम लक्ष्य की तरह चुनती है और जो प्रासङ्गिक रूप से सर्व व्यापकता का प्रमुख मानदण्ड है। फिर भी बैरिस्टर सी. आर. जैन के अनुसार ''तीर्थङ्करों के इस मत अर्थात् जैनधर्म की उत्पत्ति पूर्वी विद्वानों के लिए, जिन्होंने इसकी उत्पत्ति के विषय में हर प्रकार से कल्पनाएँ विकसित की हैं, परिकल्पना और त्रुटि का सच्चा स्रोत है। वास्तव में साधारणरूप से अनभिज्ञता और पर्याप्त जानकारी के अभाव में कभी-कभी गहरी धारणा और पूर्व

में बनाये गये विचारों के प्रभाव में तथा अक्सर पारम्परिक या भावनात्मक पूर्वाग्रहों के बहाव में विद्वान् और इतिहासकार प्रायः जैनधर्म और उसके इतिहास से न्याय करने में असफल हुए हैं।''

18 वीं सदी के अन्तिम चौथाई भाग में आरम्भिक यूरोपीय विद्वानों ने आधुनिक वैज्ञानिक आधार से भारत के इतिहास का पुनर्निमाण और सङ्कलन का कार्य सर्वप्रथम प्रारम्भ किया था। वास्तव में उन्होंने जैनधर्म पर एक अलग सम्प्रदाय की तरह पहले ध्यान ही नहीं दिया। उस समय उनकी मुख्य रुचि बौद्ध, ब्राह्मण और इस्लाम धर्म में थी, जो उनके लिए भारत के भूत और वर्तमान के अकेले प्रतिनिधि थे। लेकिन इनके इतिहास के लिए भी विशेषतः हिन्दुओं के लिए वे देशी स्रोतों पर भरोसा नहीं कर सकते थे, क्योंकि उन्होंने पहले से ही मान लिया था कि भारतीयों में कभी भी कोई ऐतिहासिक संवेदना नहीं रही है तथा उनके पास नाममात्र के लिए भी ऐतिहासिक अभिलेख और अन्य विश्वसनीय ऐतिहासिक स्रोत नहीं हैं, जिससे वे स्वयं के इतिहास का पुनर्निर्माण कर सकें। अतः वे इस निष्कर्ष पर आये कि इस कार्य के लिए उन्हें आवश्यक रूप से कहीं और देखना चाहिये। उन्हें अधिक दूर नहीं खोजना थी। चौथी-पाँचवी शताब्दी ईसा पूर्व से लेकर उनके समय तक के अनेक विदेशियों के भारत के बारे में वृत्तान्त उनके बचाव के लिए शीघ्र उपस्थित हो गये।

प्रारम्भिक यूनानी लेखक विशेषतः वे जो अलेक्जेंडर महान् के पूर्वी सैन्य अभियान (326 ई.पू.) में साथ थे अथवा बाद में राजनैतिक राजदूत की तरह भारत आये थे, जैसे मेगस्थनीज (305 ई.पू.), चीनी यात्री जैसे फाह्यान (400 सन्), ह्वेनसांग (629 सन्) और ईटसींग (695 सन्), कुछ अरबी व्यापारी जिन्होंने 8वीं से 13वीं शताब्दी तक डेकन राज्य से व्यापार किया, भटके हुए दर्शनार्थी जैसे मार्को पोलो (1288-1293 सन्) और इब्न बतूता (1323 सन्),

पुर्तगाल गोआ के ईसाईधर्म–प्रचारक, जिन्होंने मुगल दरबार में भेंट की तथा यूरोपीय साहसियों और 17वीं शताब्दी से आगे के यात्री जैसे टैरी बर्नियर, टेबर्नियर, मेनुसी, पीटर मुण्डे इत्यादि ने जैसा था और जैसा दिखा, वैसा अपना अलग–अलग भारत का वृत्तान्त छोड़ दिया। इनमें से मूलभूत यूनानी अभिलेख तो बहुत पहले ही खो गये। उससे काफी शताब्दियों के बाद लिखी गईं यूनानी तथा रोम की ऐतिहासिक कृतियों में उनका आंशिक मात्र ही सङ्कलन हो सका। लेकिन वे निःसंकोच उपयोग में आए तथा अक्सर उद्धृत हुए। अन्य प्रारम्भिक वृत्तान्तों में से अधिकांश पूर्णरूप से अपने मूलस्वरूप में हमारे पास नहीं आए। चीनी यात्रियों का दृष्टिकोण पूर्णरूप से बौद्धधर्म से सम्बन्धित था और जो उन्होंने देखा और वर्णित किया, वह उनके स्वयं के धर्म से अधिक निकट था। अधिकांश मुसलिम लेखक और इतिहासकार पक्षपाती थे और उनका दृष्टिकोण मुख्यता से मुसलमानी था।

जैसा प्रो. रावेलसन कहते हैं कि 17वीं–18वीं शताब्दी के यूरोपीय यात्रियों ने भी हिन्दुओं के बारे में प्रायः मुसलमानी दृष्टिकोण अपना लिया। ये सभी विदेशी लेखक व्यावहारिक रूप से अजनबी क्षेत्र में अजनबी होने के अलावा देश की किसी भी भाषा को कभी भी नहीं जानते थे और उनमें से अधिकतर औसत बुद्धिवाले साधारण लोग थे। वे देश के वास्तविक जीवन से कभी परिचित नहीं हुए। उनके पास अधिकांश बिन्दुओं पर भरोसेमन्द और पर्याप्त जानकारी प्राप्त करने के लिए न के बराबर अवसर और साधन थे। तथा जो कुछ भी मामूली, अस्पष्ट और प्रायः त्रुटिपूर्ण जानकारियों को सङ्कलित करने में वे सफल हुए, वे सब किंवदन्ती, नाइयों की दुकान और बाजार की गप्पों से प्राप्त हुई, जिसे वे अपनी स्वयं की भ्रामक और कई बार पूर्वाग्रहपूर्ण कल्पनाओं से भर देते थे। साम्प्रदायिक भिन्नता

आदि कई विषयों को, जिन्हें वे स्वयं महसूस करते थे, न तो वे समझ ही पाते और न ही ठीक ढंग से व्याख्या ही कर पाते थे।

तथापि इस विशाल, भिन्न और प्राचीन उपमहाद्वीप के ऐतिहासिक पुनर्निर्माण के लिए ये वर्णन सर्वाधिक प्रामाणिक और एक मात्र भरोसेमन्द स्रोत माने गये, जबकि लिखित होने पर भी देशी स्रोत और परम्पराएँ अविश्वसनीय, काल्पनिक, अक्सर मनगढ़न्त या पूर्वी आवारा कल्पनाओं का परिणाम माने गये। अनेक प्राचीन स्मारक, पुरावशेष, शिलालेख और नये साहित्यिक प्रमाण शीघ्र ही प्रकाश में आने लगे, जो भारतीय परम्परा एवं अन्य स्रोतों का समर्थन करते प्रतीत हुए। इतने पर भी इन्हें तब ही और उतना ही प्रमाणित किया जा सका, जब और जितना इन्हें उनके पसंदीदा विदेशी वृत्तान्तों द्वारा संपुष्ट किया गया। अतः आश्चर्य नहीं है कि आधुनिक भारतीय इतिहास की बुनियाद ही प्रायः मिथ्या एवं कामचलाऊँ सिद्ध हुई और कई गलत विचार, विकृतियाँ या तथ्यों के मिथ्या कथन वर्तमान की भारतीय इतिहास की पुस्तकों में अपना रास्ता बना सके।

यद्यपि अधिकांश विदेशी वृत्तान्तों में प्रारम्भिक काल की शुरूआत से ही जैन और उनके धर्म को प्रायः उल्लिखित किया है, परन्तु प्रायः भाषा और लेखकों की समझ की कठिनाई के कारण वे इस स्वरूप में थी कि अपर्याप्त जानकारी और ज्ञान की कमी से बाधित प्रारम्भिक पूर्वी विद्वान् उन्हें ठीक से भाषान्तरित नहीं कर सके और जैनधर्म व जैनों को पहचानने में असफल हुए। उन्नीसवीं सदी की दूसरी चौथाई तक भी वे इस धर्म पर ध्यान देने में सहायक नहीं हुए। लेकिन दुर्भाग्यवश बौद्धधर्म से कुछ बिन्दुओं पर आध्यात्मिक साम्य से भ्रमित होकर वस्तुतः रूढ़िबद्धता के कारण उन्होंने शीघ्र ही अंदाजा लगाया कि यह बौद्धधर्म के बाद के एक उद्गम के सिवाय कुछ भी नहीं है।

पिछली शताब्दी (19वीं) के अन्त में इस स्तर के मशहूर पूर्वी विद्वान् डॉ. हरमन जैकोबी ने प्रवेश किया और बौद्धधर्म सम्बन्धित उत्पत्ति के सिद्धान्त को बहुत अधिक सफलतापूर्वक खण्डित किया। पहले तो उन्हें तीव्र विरोध झेलना पड़ा, लेकिन अन्ततः उनकी खोज को सबने स्वीकार किया। जैकोबी ने किसी भी भ्रम की छाया के बिना सिद्ध किया कि बौद्ध शास्त्रों के निगन्थ नातपुत्त कोई अन्य नहीं, बल्कि जैनों के अन्तिम और चौबीसवें तीर्थङ्कर वर्द्धमान महावीर ही हैं, महावीर न केवल गौतम बुद्ध से प्रौढ़ समकालीन थे, अपितु बौद्धधर्म के शक्तिशाली प्रतिद्वन्द्वी भी थे और यह कि महावीर के समय में और उससे भी पहले जैनधर्म कुछ समय के लिए मजबूती से स्थापित धर्म रहा है और यह भी कि महावीर ने केवल उसको (धर्म को) उन्नत किया और साधुओं के नियमों को पुनर्गठित किया। इस प्रकरण में जैकोबी और अन्य विद्वानों के द्वारा सङ्कलित प्रामाणिक साक्ष्यों को निम्न प्रकार से संक्षिप्त कर सकते हैं–

1. जैन ग्रन्थों में मगध के राजाओं और उस समय के कुछ धार्मिक शिक्षकों के नाम उल्लिखित हैं, जो महावीर के समकालीन होने के साथ ही बुद्ध के भी समकालीन थे। बौद्ध ग्रन्थों में निगन्थ नातपुत्त के नाम से महावीर उल्लिखित हैं और उनकी मृत्युस्थली भी 'पावा' नाम से दर्शायी है। अतः इसमें कोई सन्देह नहीं है कि दोनों समकालीन और स्वतंत्र थे। बौद्ध प्रायः जैनों को प्रतिद्वन्द्वी सम्प्रदाय की तरह इंगित करते थे, लेकिन यह सम्प्रदाय नवीन उत्पन्न है, ऐसा संकेत भी नहीं दिया। इसके विपरीत जिस तरह से वे उसके बारे में बोलते थे, उससे लगता है कि यह निर्ग्रन्थों का सम्प्रदाय बुद्ध के समय में भी स्थिर मान्यता वाला रहा था। अथवा अन्य शब्दों में कथञ्चित् लगता है कि जैनधर्म बौद्धधर्म से बहुत अधिक प्राचीन है। और भी, बुद्ध ने ज्ञान की खोज के लिए कई प्रयोग किये थे, पर

महावीर के साथ ऐसा नहीं था। महावीर ने नया धर्म खोजने या सिखाने के लिए कोई प्रयास नहीं किया। तथ्य की दृष्टि से यह भी कहा जाता है कि अपने ज्ञान की खोज के लिए बुद्ध जैनों की साधु चर्या में भी प्रविष्ट हुए थे।

2. बौद्ध साहित्य में निगन्थ नातपुत्त (महावीर) और उनकी महानता के उल्लेख पाये जाते हैं। मज्झिम निकाय (**P.T.S. II, p.** 214) में लिखा है कि निर्ग्रन्थ साधुओं ने बुद्ध को बताया कि उनके स्वामी नातपुत्त सर्वज्ञ थे और उनके अनन्त ज्ञान के द्वारा उनने (महावीर ने) बताया कि पूर्व जन्मों में उन्होंने (साधुओं ने) क्या पाप किये थे। समयुत्त निकाय (**P.T.S. IV, p.**398) इस मान्यता के बारे में बताता है कि प्रसिद्ध नातपुत्त बता सकते थे कि उनका अनुयायी मृत्यु के बाद कहाँ जन्म लेगा और पूछने पर यह भी बता सकते थे कि कोई व्यक्ति पुनः कहाँ उत्पन्न हुआ। अंगुत्तर निकाय इस मान्यता पर भी संकेत करता है कि निगन्थ नातपुत्त सब कुछ जान सकता था, सब अनुभूत कर सकता था, उसका ज्ञान सीमारहित (अनन्त) था और हर समय जब हम चलते, सोते या अपने सांसारिक कार्यों को कर रहे होते हैं, तब भी वह सर्वज्ञ होता है। रॉकहिल अपनी (पुस्तक) ''लाइफ ऑफ बुद्धा'' (पृष्ठ 259) में राजा अजातशत्रु के लिए महावीर के द्वारा कहे गये इस कथन को पुष्ट करते हैं। समागाम सुत्त में महावीर की मृत्यु (निर्वाण) के बाद पावा में उनके अनुयायियों के मतभेद का संकेत है- यह तथ्य बौद्धों से सम्बन्धित था, जो प्रत्यक्ष रूप से महावीर के उत्तरजीवी थे। ''बुद्ध वृत्तान्त, उनके सैद्धान्तिक कार्य और अन्य पुस्तकों में यह देखा जा सकता है कि यह प्रतिद्वन्द्वी (महावीर) खतरनाक और प्रभावशाली व्यक्ति था और बुद्ध के समय में भी उसके उपदेश बहुत ज्यादा फैल चुके थे (व्हूलर- द जैनास्)।'' जैकोबी कहते हैं कि महावीर अपने ही तरह का महान् व्यक्ति और

उसके समकालीनों के बीच श्रेष्ठ मार्गदर्शक रहे होंगे। होर्निल कहते हैं कि अपने महान् प्रतिद्वन्द्वी बुद्ध की तरह वे भी एक श्रेष्ठ प्रभावक व्यक्तित्व रहे होंगे। बौद्ध परम्परा के अनुसार महावीर बुद्ध के समय के अतिमहत्त्वपूर्ण छह तीर्थङ्करों में से एक थे। ब्राह्मण घेरे से बाहर, निगन्थ नातपुत्त, मक्खली गोशाल (आजीवक संप्रदाय का प्रणेता), संजय बेलट्ठिपुत्त, अजित केशकंबलिन, पूर्ण कश्यप और पाकुद्ध कचायन प्रसिद्ध उपदेशक थे। प्राचीन बौद्ध सुत्त ''महापरिनिब्बान सुत्त'' (S.B.E. XI, p. 106) में वर्णित है कि महावीर के अनुयायी निर्ग्रन्थों को अनुयायी और शिष्य संघ के मुखिया, शिष्यों के गुरु, प्रसिद्ध और सिद्धान्त शालाओं के ख्यात प्रणेता कहते थे, जो जन-समुदाय के द्वारा अच्छे व्यक्ति के रूप में सम्मानित थे।

3. दोनों सम्प्रदायों के बीच परस्पर धर्मान्तरण के सन्दर्भ-

❑ महावग्ग में वैशाली के लक्ष्वियों के सेनापति और भ. महावीर के साधारण अनुयायी सिंह के बारे में लिखा है जो उनके निषेध के विरुद्ध बुद्ध को देखने जाता है और उसके द्वारा धर्मान्तरित हो जाता है।

❑ मज्झिम निकाय में भ. महावीर के साधारण अनुयायी उपाली का शरीर और मन के पापों का तुलनात्मक दुराचार विषय पर बुद्ध से विवाद के बाद के सन्दर्भ हैं।

❑ श्रीमती राह्यस डेविड्स ने ''साम (भजन) ऑफ द अर्ली बुद्धिइस्ट'' (लंडन 1903) में बौद्धधर्म से जैनधर्म और इससे विपरीत धर्मान्तरणों के कई प्रमाण दिये हैं, जैसे- अज्जुन नामक एक बौद्ध अनुयायी जैनों से सम्पर्क करता है और उनके नियमों में प्रवेश करता है। कहा जाता है कि नातपुत्त के द्वारा राजकुमार अभय को विषम परिस्थिति में पढ़ाया गया था, इत्यादि।

❑ डॉ. बी.सी. लौ ने अपनी "हिस्टोरिकल ग्लीनिंग्स" में बुद्ध के निर्ग्रन्थों के साथ सम्बन्ध और उनके पारस्परिक धर्मान्तरणों का उदाहरण दिये हैं। जैसे- सिंह, सच्चक, श्रीगुप्त, ग्रहद्दिन, दीघतापसी, उपाली, अभय राजकुमार, विशाख इत्यादि।

❑ सुमंगला विलासनी, ललित विस्तर, जातक, दाथा वंसो इत्यादि अन्य प्रसिद्ध पुस्तकों में भी जैनधर्म के उल्लेख हैं।

4. पुरानी बौद्ध पुस्तकों में सुप्रसिद्ध और जाने-माने जैनविद्या, अध्यात्मविद्या और आचार सिद्धान्तों के सन्दर्भ हैं-

❑ दीघ निकाय के ब्रह्मजाल सुत्त में आत्मा से सहित शीतल जल अर्थात् जलकायिक जीवों के सन्दर्भ हैं।

❑ उसी में आजीवक सिद्धान्त के जैन खंडन अर्थात् आत्मा के वर्ण (लेश्या का सिद्धान्त) के सन्दर्भ हैं।

❑ मज्झिम निकाय में काय, वचन और मन इन तीन दण्डों का, जिसमें जैन विश्वास करते हैं और उपाली के धर्मान्तरण से भी सम्बन्धित, काय और मन में पापों की जैन संकल्पना का सन्दर्भ है।

❑ अंगुत्तर निकाय में जैन दिग्विरति व्रत और उपोसत्थ (प्रोषध) दिवस के सन्दर्भ हैं। दिग्विरति व्रत अर्थात् "आज मैं केवल इस निश्चित दिशा में जाऊँगा।" उपोसत्थ- उपवास रखना, जिसमें साधारण शिष्य भी अपने विचारों और कृत्यों से साधुओं की तरह माना जाता है।

❑ उस ही निकाय में राजकुमार अभय और बुद्ध की मुलाकात से सम्बन्धित तपस्या के द्वारा पुराने या नये कर्मों के विनाश और पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति की जैन विचारधारा के संदर्भ हैं।

❑ महावग्ग में क्रियावाद के जैन सिद्धान्त के संदर्भ हैं।

5. बौद्धों पर जैन प्रभाव के संकेत -

डॉ. जैकोबी कहते हैं कि बौद्धों ने जैनों से 'आस्रव' पद को सैद्धान्तिक महत्त्व बिना जाने ही उधार लिया है। चूँकि बुद्ध मुख्यतया मोक्ष ले जानेवाले पर रुचि रखते थे, अतः उन्होंने नये और आत्मनिर्भर, सदाचार के आधारस्वरूप मनोविज्ञान पर विचार नहीं किया। प्रतीत होता है कि उन्होंने इस विषय पर तत्कालीन विचारों और उसके साथ ही उनको व्यक्त करनेवाले तत्कालीन शब्दों को अधिकता से ग्रहण कर लिया। अतः बौद्ध मनोविज्ञान कुछ अस्पष्ट और अपरिभाषित है। जैकोबी जोर देकर कहते हैं कि यदि जैनों ने पहले ही उसका ऐतिहासिक अर्थों में प्रयोग न किया होता, तो बौद्ध 'आस्रव' शब्द का प्रयोग उसके ऐतिहासिक अर्थ से परे कभी नहीं कर सकते थे। (जैसे लेटिन ज्योतिषियों का 'इन्फ्लूएंस' शब्द अंग्रेजी ने गोद लिया, इत्यादि।) बौद्ध 'संवर' पद का भी प्रयोग करते हैं अर्थात् 'शील संवर' (नैतिक नियमों का संयम) और कृदन्त 'संवृत' (संयमित) शब्द, जो ब्राह्मण लेखकों के द्वारा इन अर्थों में प्रयुक्त नहीं हुए। अतः अधिक सम्भव है कि ये शब्द जैनधर्म से ही गोद लिये गये हैं, जहाँ पर उनका सही अर्थ सूचित किया है, जिसे वे पर्याप्त रूप से व्यक्त करते हैं।

6. जैनधर्म के महत्त्व और संभाव्य अधिक प्राचीनता के बौद्धों के द्वारा संकलित अप्रत्यक्ष साक्ष्य-

1. वे जैनों (निगन्थों) का प्रतिद्वन्द्वियों और बौद्ध से धर्मान्तरितों की तरह उल्लेख करते हैं, परन्तु इसका अर्थ यह कभी नहीं है कि यह नवीन निर्मित संप्रदाय है।

2. वे वैशाली के लक्ष्वियों के पुराने निगन्थ चैत्यों के उल्लेख करते हैं।

3. दीघनिकाय के सामण्णफल सुत्त में भ. पार्श्वनाथ के चार व्रतों (चातुर्याम धर्म) के सन्दर्भ हैं। डॉ. जैकोबी कहते हैं कि ''यह भाग विशेष महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह दर्शाता है कि भगवान् पार्श्वनाथ के समय और उपदेशों से सम्बन्धित जैनों के पुराने रिवाजों से भी बौद्ध परिचित थे।''

4. मक्खली गोसाल मानव जाति को छह भागों में बाँटता है। तीसरा भेद निगन्थ संप्रदाय है। जैकोबी कहते हैं कि एक नये सम्प्रदाय को मानव जाति के विभाग में इतने महत्त्वपूर्ण स्थान पर नहीं रखा जा सकता था।

5. निर्ग्रन्थ पिता के अनिर्ग्रन्थ पुत्र सच्चक के साथ बुद्ध का मतभेद था। जैकोबी के अनुसार यह तथ्य निर्णायकरूप से सिद्ध करता है कि जैन बौद्धधर्म की शाखा नहीं है।

6. बौद्ध 'धम्मपद' में (ङ्क. 422) पहले और अन्तिम तीर्थङ्करों, ऋषभ और महावीर का क्रमशः उल्लेख है।

7. बौद्ध विद्वान् आर्यदेव जैनधर्म के वास्तविक संस्थापक के रूप में ऋषभदेव का उल्लेख करते हैं।

7. अब यहाँ पर स्वयं जैन ग्रन्थों के भी प्रमाण द्रष्टव्य हैं। डॉ. जैकोबी कहते हैं, ''अनेक वर्गों के लोगों की संग्रहीत परम्पराओं को अर्थहीन असत्यों की बुनी हुई जाली की तरह खारिज करने के लिए कोई तर्कपूर्ण आधार उपस्थित नहीं है। उनकी प्राचीनता से सम्बन्ध रखनेवाली सभी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ और प्रसंग लगातार इतने महत्त्वपूर्ण ढंग से संग्रहीत हैं कि उन्हें तब तक ठीक ढंग से निरस्त नहीं किया जा सकता, जब तक कि जैनधर्म की प्राचीनता पर सन्देह रखनेवाले विद्वानों के द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य की अपेक्षा अधिक मजबूत साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किये जाते।'' उत्तराध्ययन सूत्र में भगवान् महावीर

और पार्श्व के अनुयायी क्रमशः गौतम और केशी के बीच उद्यान में मुलाकात हुई और लगभग रहस्यपूर्ण विषयों पर अच्छी चर्चा होने के बाद दोनों (धर्म) नेताओं ने सिद्धान्तों की आधारभूत एकता को स्वीकार किया और वे एक ही क्षेत्र के कार्यकर्त्ता हैं, इस प्रकार पूर्ण सहमत होकर उद्यान को छोड़ा। यह पुनः स्पष्ट करता है कि महावीर के आगमन से पहले एक पुरातन जैन मान्यता प्रचलित थी और जो उनके द्वारा प्रभावशाली रूप से उन्नत हुई।

8. अन्ततः जैनदर्शन की पुरातन विशेषताएँ हैं– उनकी सर्वचेतन-वादी मान्यता, ब्रह्माण्ड के मुख्य संघटक तत्त्वों का अभाव, धर्म (जो वस्तुओं को गति में सहायक है) और अधर्म (स्थिति का माध्यम या साधन) का जीव (आत्मा), पुद्गल (पदार्थ), आकाश (अवकाश) और काल (समय) के साथ तत्त्वों के समूह में समावेश, छह सनातन द्रव्य या ब्रह्माण्ड के तत्त्व। जैनदर्शन के इन तथ्यों के फलस्वरूप डॉ. जैकोबी उपसंहार करते हैं कि भारत में आर्यों की स्थापना के बहुत प्रारम्भिक समय में ही यह धर्म विकसित हुआ था और कहा कि जैनधर्म बौद्धधर्म की शाखा है, इस भ्रान्ति को यह तथ्य हमेशा के लिए नष्ट करता है।

इस प्रकार झगड़े के बिना ही यह सिद्ध हुआ कि जैनधर्म सर्वथा स्वतंत्र और असाधारण रूप से प्राचीन धार्मिक व्यवस्था है, जो न केवल बौद्धधर्म की शाखा नहीं है, साथ ही उससे बहुत अधिक प्राचीन भी है।

कुछ अन्य अनेक विद्वानों को उद्धृत करते हैं–

प्रो. र्‍ह्यस डेविड्स– ''सम्पूर्ण भारत के इतिहास में बौद्धधर्म के उद्भव के पहले से लेकर वर्तमान समय तक जैनधर्म एक सुव्यवस्थित सम्प्रदाय रहा है।''

ई. डब्ल्यू. होपकिन्स– ''बौद्धों के द्वारा कभी भी निगंथों को नये सम्प्रदाय की तरह उल्लिखित नहीं किया गया और न ही उसके विख्यात संस्थापक नातपुत्त को उसका संस्थापक कहा गया। जाने किस स्रोत से जैकोबी दिखावटी तर्क करते हैं कि उसका सही संस्थापक महावीर से भी प्राचीन था और यह सम्प्रदाय बौद्धधर्म से पहले का है।''

इस प्रकार व्यावहारिक रूप से प्रो. मेक्समूलर, ओल्डनबर्ग, बेंडोल, सर मोनियर विलियम्स, सर डब्ल्यू. डब्ल्यू. हंटर, हार्वे, व्हीलर, डॉ. आर. जी. भण्डारकर, डॉ. के. पी. जायस्वाल, बी.जी.तिलक इत्यादि समेत सभी पश्चिमी और पूर्वी आधुनिक विद्वानों को जैनधर्म की बौद्धधर्म से अधिक प्राचीनता के विषय में कोई संदेह नहीं है।

इसके अलावा अब जैनों के 23 वें तीर्थङ्कर और भगवान् महावीर के 250 वर्ष पूर्व हुए भगवान् पार्श्वनाथ की ऐतिहासिकता को सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया गया है। वे उरग वंश के (कश्यप वंश भी कहा जाता है) काशी के राजा अश्वसेन के पुत्र थे और जैन परम्परा के 12 चक्रवर्तियों में से अन्तिम सम्राट् ब्रह्मदत्त (एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व) के वंशज थे।

जैकोबी कहते हैं ''अब सभी के द्वारा अधिक सम्भाव्यरूप से स्वीकारा गया है कि पार्श्व ऐतिहासिक पुरुष थे।''

डॉ. जार्ल चारपेंटियर कहते हैं– ''हमें दोनों बातों को याद रखना चाहिये कि महावीर के ख्यात पूर्वज पार्श्व पूर्ण निश्चय से एक वास्तविक पुरुष के रूप में अस्तित्व में होने के कारण जैनधर्म निश्चित रूप से महावीर से प्राचीन है और इसके परिणाम स्वरूप महावीर से पहले ही मूल सिद्धान्तों के मुख्य बिन्दु निर्धारित हुए होने

चाहिए।''

डॉ. आर. सी. मजूमदार– ''यद्यपि उनमें से प्रथम 22 तो इतिहास के लिए अज्ञात हैं और उनमें से अधिकांश के सम्बन्ध में तर्कपूर्ण सन्देह दिमाग में लाये जा सकते हैं। परन्तु प्रतीत होता है कि 23 वें तीर्थङ्कर पार्श्व का अस्तित्व वास्तविक है। उनकी मृत्यु (निर्वाण) ईसा पूर्व 8 वीं शताब्दी में रखी जा सकती है।''

हार्म्सवर्थ– ''वे जैन अनेक संख्या में नातपुत्त (महावीर वर्द्धमान) के पूर्वज प्रवर्तकों में विश्वास रखते हैं और इनमें से अन्तिम पार्श्व या पार्श्वनाथ के लिए विशेष पूज्यभाव रखते हैं। इस स्थान पर वे सही हैं, जहाँ तक पूर्व व्यक्तित्वों की बात है, वे अपेक्षाकृत अधिक काल्पनिक हैं। वास्तव में वे जैनधर्म के शाही संस्थापक थे (776 ई.पू.)। जबकि उनके उत्तराधिकारी महावीर कई पीढ़ी छोटे हैं और केवल प्रवर्तक के रूप में ही समझे जा सकते हैं। गौतम से भी प्राचीन काल से पार्श्व के द्वारा संस्थापित निर्ग्रन्थ नाम से प्रसिद्ध धार्मिक दल औपचारिक रूप से स्थापित हो चुका था। बौद्ध लेखों के अनुसार यह दल बौद्धधर्म के उत्थान के मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ पैदा करता था।''

प्रसिद्ध पुरातत्त्वविद् प्रो. रामप्रसाद चंदा कहते हैं, ''श्वेताम्बर जैन सिद्धान्त में जो कुछ है, उसे पाली सुत्त पर्याप्त मात्रा में पुष्ट करते हैं। ईसा की प्रथम शताब्दी की मथुरा की प्राचीन जैन शिल्पकलाएँ कई जैन परम्पराओं की प्राचीनता और प्रामाणिकता का आश्वासन देती हैं। साधारणतया माना जाता है कि जैन साधु महावीर से पहले पार्श्वनाथ के द्वारा स्थापित नियमों के अनुसार चलते थे। उनके पास स्वयं उनके ही चैत्य भी थे।

डॉ. बी. सी. लॉ., (डी. लिट्, एफ. आर. ए. एस. बी.

इत्यादि) कहते हैं, ''महावीर के उद्भव से पूर्व, जिस मान्यता के वे अन्तिम प्रतिपादक थे, वह वैशाली और आस-पास के देश में कुछ प्राचीन रूप में प्रचलित रही है, ऐसा प्रतीत होता है। ऐसा मालूम होता है कि यह धर्म उत्तर-पूर्वीय भारत विशेषत: वैशाली के रहने वालों के मध्य क्षत्रिय लोगों द्वारा स्थिर और स्थापित किया गया था। आचारांग सूत्र से हमें पता चलता है कि महावीर के माता-पिता पार्श्व के पूजक और श्रमणों का अनुसरण करने वाले थे।''

महाभारतकालीन धार्मिक गुरुओं के बारे में बोलते हुए प्रो. जे. सी. विद्यालंकार कहते हैं, ''ऐसा एक महान् सुधारक तीर्थङ्कर पार्श्व ईसा पूर्व 8वीं-9वीं शताब्दी में उत्कर्ष पर था। उसके पिता अश्वसेन वाराणसी (बनारस) के राजा थे और उसकी माता का नाम वामा था। जैन मानते हैं कि उनका धर्म बहुत प्राचीन है और महावीर के पहले तेईस अन्य तीर्थङ्कर हो चुके थे। इस मान्यता को एकदम त्रुटिपूर्ण और आधारहीन ठहराना और सभी पूर्व तीर्थङ्करों को काल्पनिक और अनैतिहासिक ठहराना न्यायसंगत और उचित नहीं है। इसमें कुछ भी अविश्वसनीय नहीं है। भारत का प्रारम्भिक इतिहास जैनों से उतना ही सम्बन्धित है, जितना वेद को माननेवालों का, क्योंकि वर्तमान आधुनिक आलोचकों ने तीर्थङ्कर पार्श्व की ऐतिहासिकता स्वीकार कर ली है। अन्य तीर्थङ्करों के वृत्तान्त पौराणिक कथाओं में इतने उलझे हुए हैं कि अभी तक उनका पुनर्निर्माण नहीं हुआ। लेकिन महावीर और बुद्ध से भी पहले वैदिक मान्यता से भिन्न सम्प्रदाय भारत में था, इस तथ्य के निश्चित प्रमाण हैं। बुद्ध के जन्म से पूर्व अर्हत और उनके चैत्य मौजूद थे। (बुद्ध स्वयं ही महावीर के वंश लिक्ष्वियों और उनके धर्म का संकेत देते हैं।) उन अर्हतों और चैत्यों को माननेवालों को व्रात्य के नाम से जाना जाता है, जिनका अथर्ववेद में भी उल्लेख है।''

इन व्रात्यों के बारे में बोलते हुए डॉ. के.पी. जयस्वाल ने कहा, ''वे व्रात्य अथवा अब्राह्मणिक क्षत्रिय कहलाते हैं। उनकी प्रजातंत्रात्मक सरकार थी, उनके स्वयं के तीर्थ थे, उनकी अवैदिक पूजा थी, उनके स्वयं के धार्मिक नेता थे और वे जैनधर्म को संरक्षण देते थे।''

अतः डॉ. ए. ग्युरिनोट के शब्दों में, ''पार्श्वनाथ ऐतिहासिक व्यक्तित्व थे, अब इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है।'' और उनकी मान्यता न केवल भारत के विभिन्न हिस्सों में व्याप्त थी, बल्कि इस देश की सीमाओं के पार भी फैल गयी थी, इस बात को बताने के प्रमाण हैं।

गौतम बुद्ध से बहुत पहले जैनधर्म के प्रचलन के बारे में लिखते हुए सर पी. सी. मोघ अवगत कराते हैं कि लगभग 1885 में प्रो. बील ने रा''यल एसियाटिक सोसाइटी से कहा कि निःसंदेह मध्य रशिया में शाक्य मुनि गौतम के द्वारा बौद्धधर्म के प्रचार से बहुत पहले ऐसी मान्यता थी। सर हेनरी रौलिनसन ने भी रॉयल ज्योग्रफीकल सोसाइटी के कार्यवाही आलेख (सित. 1885) और अपनी ''सेन्ट्रल एशिया'' (पृ. 246) में कश्यपों के अस्तित्व को दिखाते हुए बाल्ख में एक नये विहार और ईंटों में अन्य स्मारकों के अवशेषों पर ध्यान आकर्षित किया।

कश्यप एक प्राचीन जैन मुनि का नाम और कई तीर्थङ्करों का गोत्र होने के अलावा पार्श्वनाथ का भी गोत्र था। आदिपुराण के अनुसार कश्यप, जिसका अन्य नाम मघवा था, वह उरग वंश (प्राचीन नाग परिवार की एक शाखा) का संस्थापक था, जिसमें तीर्थङ्कर पार्श्व जन्मे थे।

भौगोलिक नाम कास्पिया कश्यप का एकार्थक है। ईसा की

7वीं शताब्दी में मध्य एशिया के इस शहर (अर्थात् किआपिसि) में ह्युन ट्सांग ने निगंथों अथवा जैनों की मौजूदगी पर ध्यान दिया था और उससे लगभग हजार वर्ष पहले भारत की उत्तर पश्चिम सीमाओं के पास यूनानी भी इसी प्रकार उनसे मिले थे। अतः तार्किकरूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि महावीर से भी पूर्व कासपिया, अमान, समरखंड के शहरों, बाल्ख इत्यादि में कभी जैनधर्म प्रचलित था। यूनानी इतिहास के पिता, हेरोडोट्स ने ईसा पूर्व की 5वीं शताब्दी में एक भारतीय धार्मिक सम्प्रदाय के बारे में लिखा, जो कुछ नहीं है, जिसमें जीवन था और जो ज्वार जैसे धान्य खाकर जीवन निर्वाह करते थे। महावीर और बुद्ध के समकालीन यूनानी दार्शनिक पाईथागोरस (ईसा पूर्व 580 में जन्मा) अध्यात्म विद्या के सिद्धान्त, आत्माओं के पुनर्जन्म और कर्म के सिद्धान्त को मानते थे, जीवन के विनाश और मांस खाने से दूर रहते थे और कुछ शाकों को निषिद्ध मानते थे। वह अपने पूर्व जन्मों को स्मरण करने की शक्ति रखने का दावा भी करता था। अनाथ दार्शनिक नाम से प्रसिद्ध एशिया माईनर के ये प्रारम्भिक एकाकी दार्शनिक आत्मा की तुलना में शरीर की हीनता को भी मानते थे। अब ये सभी मान्यताएँ विचित्र और पृथक् सूचक रूप से जैनों की हैं और इनका बौद्धधर्म अथवा ब्राह्मणधर्मों से कुछ भी समानता नहीं है। क्योंकि वे मान्यताएँ इन दूर के क्षेत्रों में पहले से ही ऐसे समय में स्वीकृत थीं, जब महावीर और बुद्ध ने उपदेश देना शुरू ही किया था और क्योंकि इसमें कोई संदेह भी नहीं है कि ये विचार भारत से ही वहाँ पहुँचे। अतः यहाँ कोई संदेह शेष नहीं है कि उन्होंने किसी प्रारम्भिक का न सही, कम से कम पार्श्व और उनके अनुयायियों का प्रचार निश्चित रूप से स्वीकार कर लिया था। वास्तव में जैसा डॉ. राधाकृष्णन कहते हैं, ''इसमें संदेह नहीं है कि वर्द्धमान और पार्श्वनाथ के पूर्व भी जैनधर्म प्रचलित था।''

प्रसिद्ध विद्वान् संस्कृतज्ञ और कोशकार डॉ. नागेन्द्र नाथ बसु कहते हैं, ''लेकिन भगवान् पार्श्वनाथ के पूर्वज, जैनों के 22 वें तीर्थङ्कर, भ. नेमिनाथ कृष्ण के चचेरे भाई थे। यदि हम भगवान् कृष्ण की ऐतिहासिकता को मानते हैं, तो इसमें कोई तर्क नहीं है कि जिससे हम उनके समकालीन 22 वें तीर्थङ्कर भगवान् नेमिनाथ को वास्तविक और ऐतिहासिक पुरुष नहीं स्वीकारें।''

डॉ. फुहरर कहते हैं, ''जैनों के 22वें तीर्थङ्कर भगवान् नेमिनाथ ऐतिहासिक पुरुष के रूप में स्वीकारे गये हैं।'' प्रो. एल. डी. बारनेट का भी यही विचार है।

मि. करव कहते हैं, ''नेमिनाथ कृष्ण के चचेरे भाई थे। जब जैनों के 22वें तीर्थङ्कर भगवान् कृष्ण के समकालीन थे, तो पाठक शेष 21 तीर्थङ्करों की प्राचीनता की कल्पना अच्छे प्रकार से कर सकते हैं।''

कर्नल टॉड– ''मुझे ऐसा लगता है कि चार पृथक् बुद्ध या ज्ञानी पुरुष थे। ईसा पूर्व 1120 में दूसरे (जैनों के 22वें) नेमिनाथ थे।'' और कहा कि वे कृष्ण के समकालीन थे।

डॉ. हरिसत्य भट्टाचार्य (एम.ए., बी.एल.) को नेमिनाथ की ऐतिहासिकता पर कोई संदेह नहीं है और वस्तुतः वे इस आधार से कृष्ण की ऐतिहासिकता स्थापित करते हैं। वे कहते हैं, ''महत्त्वपूर्ण भिन्नताएँ होने पर भी जैन पुराणों में वर्णित कृष्ण कथा वैदिक पुराणों से मूलभूतरूप से समान है।'' वे इस विचारधारा के हैं कि जैन संस्करण ब्राह्मण परम्परा से काफी स्वतंत्र है और ''जैन पवित्र ग्रन्थों में कृष्णकथा की मौजूदगी बताती है कि महाभारत के कृष्ण विशुद्ध काल्पनिक पुरुष नहीं हो सकते हैं, परन्तु पूर्ण सम्भावनाओं से वे ऐतिहासिक पुरुष थे और एक उच्च भावनात्मक ताकतवर राजा थे।''

इसके अलावा जैसा माननीय जे. केनेडी कहते हैं,"जैन परम्पराएँ कृष्णकथा के प्राचीनतम स्वरूप का प्रतिनिधत्व करती हैं।"

वास्तव में नेमिनाथ या अरिष्टनेमि के बारे में जैन परम्पराएँ जैसा कि उनके हरिवंश (पुराण), अरिट्ठणेमि चरिउ और अन्य कृतियों में सङ्कलित है, ब्राह्मण परम्पराओं के द्वारा पूर्णरूप से पुष्ट है। अरिष्टनेमि के विशिष्ट उल्लेख वेदों, उनकी टीकाओं और हिन्दु पुराणों में है, जो स्पष्टरूप से जैन तीर्थङ्कर को दर्शाते हैं। वैदिक मंत्रों में वे उस व्यक्ति की तरह वर्णित हैं, जो जन्म और मरण के समुद्र को पार करने में समर्थ है, जो हिंसा को मिटानेवाला है, जो जीवों को चोट न पहुँचाने के साधक हैं आदि। सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् जैसे स्वामी विरुपाक्ष वादियर (एम.ए., वेदरत्न) भी पूर्ण सहमत हैं कि ये वैदिक और पौराणिक उल्लेख निसंदेह किसी अन्य को नहीं, बल्कि जैन तीर्थङ्कर अरिष्टनेमि को ही इंगित करते हैं। जो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, वह यह कि महाभारत में भी कम से कम दो स्थानों पर जिनेश्वर विशेषण के साथ उनके नाम का उल्लेख है।

डॉ. प्राणनाथ विद्यालङ्कार ने बेबीलोनिया के (चालडी) राजा नेबूचडनजार (ईसा पूर्व 1140 लगभग) की एक अनुदान ताम्रपट्टिका का प्रकाशन 19 मार्च 1935 के "टाइम्स ऑफ इंडिया" (साप्ताहिक) में किया, जिसे उन्होंने काठियावाड़ में खोजा था। उनके आशय के अनुसार इस दस्तावेज ने उद्घाटित किया है कि "वह राजा नेबूचडनजार, जो रेवानगर (काठियावाड़ में) का स्वामी था और जो सु (सुमेर) जाति से सम्बन्धित था। वह यदु राजा के क्षेत्र (द्वारका) में आया। उसने एक मंदिर बनाया और सम्मान प्रकट किया और रैवत पर्वत के सर्वोत्तम देव भगवान् नेमि के लिए निरन्तर अनुदान किया। प्रो. प्राणनाथ स्वयं कहते हैं, "यह शिलालेख महान् ऐतिहासिक मूल्य का है। यह जैनधर्म की प्राचीनता सिद्ध करने के लिए बहुत

सहायक होगा, क्योंकि इस शिलालेख में नेमि का नाम मौजूद है।''

यह महत्त्वपूर्ण दस्तावेज यद्यपि सिद्ध करता है कि पार्श्व और महावीर के उद्‌भव से भी पूर्व महाभारत के बाद के दिनों में 22वें जैन तीर्थङ्कर भगवान् नेमिनाथ की पूजा पहले से ही अच्छी तरह स्थापित हो चुकी थी। अतः अब भगवान् अरिष्टनेमि की ऐतिहासिकता और पार्श्वनाथ (ईसा पूर्व 9वीं शताब्दी) से बहुत पूर्व जैनधर्म के अस्तित्व के बारे में कोई संदेह शेष नहीं रहना चाहिये।

अरिष्टनेमि भग. कृष्ण के चाचा और शौरीपुर (आगरा के पास) के राजा समुद्रविजय के पुत्र थे। लेकिन जब सभी यदुवंशी कृष्ण के नेतृत्व में पश्चिमी तट पर द्वारका में स्थानान्तरित हुए, तब नेमिनाथ भी उनके साथ आ गए। कृष्ण ने अपने चचेरे भाई का विवाह जूनागढ़ के राजा की पुत्री राजुलमती के साथ तय कर दिया। लेकिन विवाह के अवसर पर भोज के लिए जिनको मारा जाना था, उन जानवरों पर दया करते हुए नेमिनाथ ने विवाह के समारोह को तुरंत छोड़ दिया, संसार को त्याग दिया, रैवत पर्वत (गिरनार या ऊर्जयन्त) के शिखर पर आरूढ़ हो गये। वहाँ कठोर तप किया, केवलज्ञान प्राप्त कर पूर्ववर्ती तीर्थङ्करों के अहिंसक मत का उपदेश विश्व को दिया और अन्ततः मोक्ष प्राप्त किया।

अतः उनके वास्तविक ऐतिहासिक पुरुष होने में कोई प्रश्न नहीं है, लेकिन उनका समय निश्चित करने में कुछ कठिनाई है, क्योंकि महाभारत युद्ध के सही समय के विषय में मान्यताएँ अभी भी भिन्न हैं, जो कि ईसा पूर्व 900 से ईसा पूर्व 3000 तक विभिन्न विद्वानों के साथ बदलती हैं। लेकिन मान्यताओं की आधुनिक सामूहिक राय उसे ईसा पूर्व 15वीं शताब्दी के मध्य में स्थिर करती है और अब साधारणतया इसे भारत के सतत इतिहास का प्रारम्भिक बिन्दु

माना जाता है। उससे पहले के काल को इतिहास (लिखित) से पूर्व का कहते हैं, जिसके बारे में हमारा ज्ञान मुख्यतया धार्मिक परम्पराओं अर्थात् जैन और हिन्दू पुराणों पर आधारित है। मुख्यतया क्योंकि उस समय के इतिहास को अभी तक किसी ठोस आधार पर पुनर्निर्माण नहीं किया जा सका है।

लेकिन राम का नाम अथवा रामायण की कथा भारत में प्रतिदिन उतनी ही घरेलु है, जितना कृष्ण का नाम अथवा महाभारत की कथा। यद्यपि बहुत से विद्वान् अभी भी रामकथा को काल्पनिक मानने का आग्रह करते हैं, फिर भी देश का साधारण जनसमूह और बुद्धिजीवी वर्ग के साथ विशेषतया भारतीय विद्वान् दृढ़ता से मानते हैं कि कथा से जुड़ी हुई अधिकतर घटनाएँ और पुरुष एकदम वास्तविक और ऐतिहासिक हैं, भले ही उनका समय अज्ञात हो और वे वैज्ञानिक इतिहास के घेरे के पर हों।

यहाँ फिर से डॉ. एच. एस. भट्टाचार्य कहते हैं, ‘‘रामायण’’ की कथा जैसी जैन पुराणों में बताई है, वह मूलभूत रूप से वाल्मिकी के वृत्तांत के समान है। वह ब्राह्मणिक संस्करणों से भी काफी स्वतंत्र है।’’ उससे आगे कि ‘‘अतः यह महत्त्वपूर्ण तथ्य कि जैनों के पवित्र साहित्य में पूर्ण आदर से साकार हुई रामकथा इस बात का पूर्ण अकाट्य प्रमाण है कि यह प्रतीकात्मक पोशाक में दार्शनिक परिकल्पना मात्र नहीं है और इसका ऐतिहासिक आधार भी अवश्य है। इन परिस्थितियों में यह मानना अन्यायसंगत नहीं होगा कि रामकथा कम से कम ऐतिहासिक सच का महत्त्वपूर्ण अंश है।’’

वास्तव में इस कथा का प्राचीनतम उपलब्ध जैन संस्करण अर्थात् विमलसूरी का पउमचरिउ भी उस ही समय का है, जिस समय का प्राचीनतम ब्राह्मणिक संस्करण वाल्मिकी की रामायण है

अर्थात् ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी का। इसके अलावा जैन संस्कृत पद्मपुराण (7वीं शताब्दी), अपभ्रंश की स्वयंभू रामायण (8वीं शताब्दी), मुनिसुव्रत काव्य और पुराणों ने ब्राह्मण पुराणों और अपेक्षाकृत बहुत बाद के देशी भाषा के रामायणों की अपेक्षा इस कथा को संरक्षित और लोकप्रिय बनाने में कम योगदान नहीं दिया है।

लेकिन ब्राह्मण रामायण से जैन संस्करण जिस बात से भिन्न है, वह जैनधर्म की स्थिति पर बहुत महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालता है। जैन संस्करणों के अनुसार रावण और अनेक राक्षस विद्याधरों की जाति के अत्यधिक सभ्य लोग हैं और जिन के महान् भक्त हैं। यहाँ हिन्दु महाकाव्यों से भिन्न वे डरावनी शक्ल, दुष्ट स्वभाव और अधार्मिक दैत्य, राक्षस, पिशाच या असुरों की तरह प्रदर्शित नहीं हुए हैं, बल्कि निश्चितरूप से वैदिक साधुओं के बलिदानी भक्तों के विरोधियों के रूप में वर्णित हुए हैं। इसलिए ही डॉ. भट्टाचार्य ने पाया कि ''इन दोनों वृत्तान्तों पर एक साथ विचार करने पर वर्तमान समय के कुछ विद्वान् उग्रता से आग्रह करते हैं कि वैदिक लोगों ने राक्षसों को बुरा बताया, क्योंकि वे जैन थे और कहते हैं कि वाल्मिकी की रामायण में राक्षसों का वर्णन स्पष्टरूप से दर्शाता है कि वे जैनों से भिन्न नहीं हो सकते थे और रामायण के लेखकों ने केवल धार्मिक हठधर्मिता के कारण उन्हें डरावने स्वरूप में प्रस्तुत किया।'' एफ. ई. पारगिटर भी जोर देकर कहते हैं कि ''हिन्दुओं के द्वारा जैनों के साथ असुरों और दैत्यों (द्वेष के शब्द) की तरह बर्ताव किया जाता था।'' एडिकन्स कहते हैं, ''रोहड भी जैनों को असुरों और राक्षसों के वंशज होने की कल्पना करते थे।'' सी. एफ. ओल्घम इस मान्यता के हैं कि ''बौद्ध और जैन दोनों व्यवस्थाएँ सूर्य और सर्प से निकटता से जुड़ी हैं और उनने अपने प्रमुख सहायक सूर्यवंश से पाए, जो ब्राह्मण प्रभाव में न के बराबर आये थे। पुराण वर्णन है कि जैन असुरों

में उत्पन्न हुए। बुद्ध से पूर्व भी जैनों का अस्तित्व था। सभी चौबीस तीर्थङ्कर क्षत्रिय थे और दो के अलावा सभी सूर्य वंश के इक्ष्वाकु थे।''

राम सूर्यवंश के इक्ष्वाकु थे, इस विषय पर अब कोई प्रश्न नहीं है। जैन परम्परा के अनुसार वे अपने परिवार के अधिकतर सदस्यों के साथ जैनधर्म के अनुयायी थे। इतना ही नहीं, बल्कि रामचन्द्र, उनका भाई लक्ष्मण और उनका शत्रु रावण जैन परम्परा के 63 महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों (63 शलाका पुरुषों) में से तीन थे। वहाँ पर रामायण के राक्षस और वानरों को अर्द्धमानव, अर्द्धमानवपशु या दैत्यों की तरह नहीं, अपितु अत्यधिक सभ्य और संस्कारित विद्याधरों की जाति के मनुष्यों की तरह प्रस्तुत किया है, जो अधिकतर जिन के भक्त थे। ये प्रारम्भिक भारत के गैर आर्य निवासी साधारणतया अब द्रविड कहलाते हैं। पारगिटर के अनुसार यहाँ तक कि ''सूर्यवंशी ही इस देश के नैसर्गिक निवासी थे और द्रविड परम्परा के थे।'' और जैसा कि आगे दर्शाया जायेगा, इन प्रारम्भिक द्रविडों का धर्म जैनधर्म ही था।

योगवशिष्ठ रामायण, जिसके लेखक के बारे में कुछ लोग रामचन्द्र के पारिवारिक पुरोहित् वशिष्ठ को और अन्य वाल्मिकी को उद्धृत करते हैं, उल्लेख करता है कि ''राम जिन के समान बनना चाहते थे।''जो वाल्मिकी रामायण महाभारत की तरह ब्राह्मण पुनर्जीवन के युग का फल था और उस ही तरह अत्यधिक पूर्वाग्रहपूर्ण और पुनर्जीवकों की साम्प्रदायिक भावना का सच्चा प्रतिनिधित्व करती है और जो जैनों और जैनधर्म के किसी भी उल्लेख करने का सावधानीपूर्वक निषेध करती है, वह भी कुछ स्थानों पर स्खलित हुई है। उदाहरण के लिए वह उल्लेख करती है कि राम के पिता राजा दशरथ ने श्रमणों की सेवा की थी, जो कि भूषण की टीका के अनुसार दिगम्बर जैन

तपस्वी थे।

अतः इसमें कोई संदेह नहीं है कि राम के समय में जैनधर्म मौजूद था और जैनों के 20वें तीर्थङ्कर भगवान् मुनिसुव्रतनाथ, जो राजगृह के राजकुमार और राम के वरिष्ठ समकालीन थे, स्वयं राम की तरह ही वास्तविक व्यक्ति थे।

इसके अलावा वह मुनिसुव्रत का ही समय था, जब राजा वसु चैद्योपरिचर के दरबार में ''वैदिक यज्ञों में पशुओं अथवा वनस्पति उत्पादों की बली करनी चाहिए'' इस विषय पर तीक्ष्ण शास्त्रार्थ रखा गया था। यद्यपि राजा वसु ने अपना निर्णय पशुबलि के समर्थन में दिया और तब ही से यह भयानक कृत्य प्रारम्भ हुआ। वसु की यह कथा जैन और ब्राह्मण दोनों परम्पराओं में व्यावहारिकरूप से समान है, जो इसकी सत्यता का प्रमाण है।

शेष तीर्थङ्करों में प्रथम ऋषभ, द्वितीय अजितनाथ और सातवें सुपार्श्व का उल्लेख भी वेदों में खोजा जा सकता है।

अब राजा वेणु की एक विचित्र कथा है, जो मूलतः वेदों का अनुयायी हिन्दु था, लेकिन एक जैन मुनि के निर्देश पर जैन साधु बन गया और इसलिए पापी कहलाता है और उसकी मान्यता का परिवर्तन पतन माना गया। श्री एस. सी. घोशाल (एम.ए., बी.एल., पुराण काव्यतीर्थ इत्यादि) कहते हैं, ''यह मात्र अकृत्रिम है, जैसा कि कृति (अर्थात् हिन्दु पद्मपुराण) जिसमें सम्बन्धित कथा है, उन उपदेशों को प्रस्तुत करती है, जो जैनधर्म के लिए अनुकूल नहीं हैं, लेकिन इस कहानी से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि यह एक ऐतिहासिक तथ्य होना चाहिये कि वेणु नामक हिन्दु राजा जैनधर्म में धर्मान्तरित हुआ। जहाँ तक मैं जानता हूँ यह तथ्य उन विद्वानों के ध्यान में नहीं आया, जिन्होंने जैनधर्म की प्राचीनता को स्थापित करने

का प्रयास किया।''

अब यह कथा प्रायः सभी ब्राह्मण पुराणों में उपस्थित है और यह राजा वेणु पद्म और वरुण पुराणों में मानवजाति के मूल ब्रह्मा से वंशक्रम में छठा घोषित किया गया है, जबकि भागवत में ग्यारहवाँ, गरुडपुराण में तेरहवाँ और विष्णु एवं शेष अन्य पुराणों में रचनाकार ब्रह्मा के पुत्र और प्रथम पुरुष स्वयंभूमनु से वंशक्रम में नौवां माना गया है। यह भी कहा जा सकता है कि वेणु ने असुरों को जैनधर्म का उपदेश दिया था। श्री घोशाल कहते हैं ''सभी पुराणों से यह स्पष्ट होता है कि वेणु प्रारम्भ से ही पशुबलि और ब्राह्मणों का विरोध करता था और वह न केवल नास्तिक और वेदविरोधी था, बल्कि जैन भी था।'' जैनधर्म के उद्‌गम के बारे में विभिन्न पुराणों में कुछ अन्य कथाएँ भी हैं। लेकिन उनके बारे में रोचक तथ्य है कि वे अपने मत के किसी भी महत्त्वपूर्ण अनुयायी को उसी प्रकार से सर्वप्रथम किसी न किसी गुरु के प्रभाव से जैनधर्म में धर्मान्तरित करते हैं और फिर यह नया धर्मान्तरित व्यक्ति अपने नये मत का उपदेश देता है। यह स्पष्टरूप से दो विषय सिद्ध करता है, पहला कि प्रारम्भिक वैदिक काल में ब्राह्मण मत से जैनधर्म में धर्मान्तरित होना बहुत साधारण बात थी और दूसरा कि प्रारम्भिक समयों में भी जैनधर्म स्थापित धर्म था और गैर आर्य देशी वंशों में अधिक लोकप्रिय था, जिन्हें आर्यों के द्वारा असुर, दैत्य, राक्षस आदि कहा जाता था।

और चूँकि जैसा मैकडोनल कहते हैं, ''हिन्दु पुराणों में बहुत कुछ पुराना मौजूद है और वे हमेशा महाभारत और मनु से उधार नहीं लेते हैं, लेकिन स्वयं वेदों और कुछ अन्य प्राचीन सङ्कलनों से जानकारियाँ प्राप्त करते हैं।'' इन कहानियों का महत्त्व अत्यधिक नहीं आंका जा सकता है, खासकर वेणु की कहानी जो सभी पुराणों से

सम्बन्धित है। यह स्पष्टरूप से जैनधर्म की प्राचीनता को ब्राह्मण रचना के एकदम प्रारम्भिक समय तक अथवा स्वयं ब्राह्मणधर्म की उत्पत्ति से पूर्व के समय तक भी पीछे ले जाता है।

फिर भी कुछ विद्वान् हैं जो अधिकतया गहरा पूर्वाग्रह और अन्य भावनात्मक तर्कों के कारण मानने का आग्रह करते हैं और तर्क करते हैं कि जैनधर्म ब्राह्मणधर्म की एक शाखा है या बौद्धों की तरह जैन भी मात्र हिन्दुधर्म के मतान्तर हैं, चाहे उनका धर्म जैनधर्म से एकदम स्वतंत्र और अधिक प्राचीन ही क्यों न हो।

जैसा कि पूर्व कथन से स्पष्ट हो जाना चाहिये कि ऐसी धारणा रखने का वास्तव में कोई भी पुष्ट कारण नहीं है। वेदों से पुराणों तक ब्राह्मण साहित्य और अन्य मध्ययुगीन साहित्य में जैनों का, उनके धर्म का, उनके तीर्थङ्करों का और उनके सिद्धान्तों का भी कभी उपहास करते हुए और बुरा बताते हुए, तो कभी प्रशंसा और अनुमोदना करते हुए, लेकिन प्रायः गलत समझते हुए और गलत अर्थ लगाते हुए अनगिनत बार उल्लेख है। कुछ स्थानों पर जिन या कोई तीर्थङ्कर या जैन तपस्वी के प्रति भक्ति को श्रुतियों और स्मृतियों के द्वारा कहे गये धार्मिक प्रचलनों से भी अधिक उच्च दर्जा दिया है। और यदि ऐसी कथाओं को खोजा जा सकता है, जिसके फलानुसार जैनधर्म किसी वेदों के अनुयायी के द्वारा प्रसारित किया गया, जो अपने मूलवर्ग से मतभिन्न था, तो जैन परम्परा में भी उतनी ही प्राचीन समान कथाएँ हैं कि वह भगवान् ऋषभ का पोता मरीची था, जिसने जिन के तपस्वी मत से शिथिल होकर झूठे सिद्धान्तों का उपदेश दिया, जिसमें से बाद में जिन के अहिंसक मत से प्रतिकूल वैदिक और उसी जैसे 363 पाखंड–मतों का निर्माण हुआ। वास्तव में जैन परम्परा के अनुसार वह दसवें तीर्थङ्कर शीतलनाथ का समय था, जब ब्राह्मणधर्म ने अपनी प्रथम उपस्थिति दर्ज की और बीसवें तीर्थङ्कर

के समय में खूनी बलियों ने अपना प्रथम प्रोत्साहन शाही संरक्षण में प्राप्त किया।

यहाँ तक कि प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् प्रो. वी. पी. वादयार भी कहते हैं कि ''जैन शास्त्रों के अनुसार ऋषभदेव का पोता मरीची भौतिकवादी था। क्योंकि वेद उस ही भौतिकवादी भावना का प्रतिनिधित्व करते हैं, यह निश्चितरूप से उसके कारण ही था कि वे (ऋग्वेद आदि) लोकप्रिय हुए। परिणामस्वरूप साधु मरीची के स्मरण में वेदों और पुराणों में कई मंत्र पाये जाते हैं और कई स्थानों पर जैन तीर्थङ्करों के भी उल्लेख हैं। अतः जैनधर्म के अस्तित्व को वैदिक युग में स्वीकार न करने का कोई तर्क हमारे पास नहीं है।''

वास्तव में ऐसा कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है, जो बता सके कि अमुक समय में वैदिक धर्म या उसके किसी परवर्ती विकास से जैनधर्म अलग हुआ और न ही दोनों व्यवस्थाओं के मूलभूत सिद्धान्तों और आवश्यक लक्षणों के बीच कोई चिह्नित समानता है, जो उस सम्भावना का समर्थन कर सके। पूर्णतया अहिंसक मत, सर्व चैतन्यवादी मान्यता, सूक्ष्म और विशिष्ट कर्म सिद्धान्त, एक रचनाकार और रचना सिद्धान्त का निषेध और ऐसी ही अन्य विशेषताओं के साथ जैनधर्म न केवल पूर्णतया मौलिक व्यवस्था है, अपितु अन्य सभी व्यवस्थाओं से सर्वथा स्वतंत्र भी है। अपने उद्‌गम में यह न केवल गैर आर्य और प्राक् आर्य है, इस आशय से कि ये संज्ञाएँ अब साधारणतया समझी जाती हैं, लेकिन साथ ही आदिकालीन और सर्वथा देशी भी है। हिन्दु मतान्तर के इस सिद्धान्त का सफलतापूर्वक खण्डन करते हुए बैरिस्टर सी. आर. जैन निष्कर्ष निकालते हैं कि ''अतः पावन तीर्थङ्करों का यह मत जैनधर्म, हिन्दुधर्म की पुत्री या बागी संतान होन से दूर, वास्तव में निःसंदेहरूप से उस प्राचीन मत का आधार है।'' और यदि वहाँ कोई ऋण था, तो वह दूसरी ओर अधिक था।

प्रो. जैकोबी कहते हैं, ''निष्कर्ष में मैं अपने दृढ़ विश्वास को कहना चाहूँगा कि जैनधर्म अन्य सभी से एकदम भिन्न और स्वतंत्र, एक मौलिक व्यवस्था है और इसलिए यह प्राचीन भारत में दार्शनिक विचार और धार्मिक जीवन के अध्ययन के लिए बहुत महत्त्व का है।''

भारतीयदर्शन की व्यवस्था में जैनधर्म का स्थान विषय पर चर्चा करते हुए एम. एम. डॉ. गंगानाथ झा निष्कर्ष निकालते हैं, ''जैनदर्शन निःसंदेह बौद्धधर्म, वेदांत, सांख्य, न्याय और वैशेषिक व्यवस्थाओं से कुछ सिद्धान्त साम्यता रखता है, लेकिन यह उसके स्वतंत्र उद्‌गम और मुक्त विकास को असिद्ध नहीं करता है। यदि उसमें अन्य भारतीय व्यवस्थाओं के साथ कुछ समानताएँ हैं, तो उसकी अपनी विशेषताएँ और चिह्नित अन्तर भी हैं।''

प्रो. जी. सत्यनारायण मूर्ति भी पाते हैं, ''उसके कुछ सिद्धान्त अपने-आप में विशिष्ट हैं और जैनमत पर व्यक्तिवाद की छाप छोड़ते हैं।'' डॉ. गियरनॉट कहते हैं कि ''जैनधर्म बहुत मौलिक, स्वतंत्र और व्यवस्थित सिद्धान्त है।''

प्रो. चिन्ताहरन चक्रवर्ती- ''यद्यपि हमारे ज्ञान के इस स्तर पर जैन और ब्राह्मण वस्तुओं की तुलनात्मक प्राचीनता का निश्चय करना सम्भव नहीं है, फिर भी जैनधर्म में वास्तविक और तर्कपूर्ण स्तर आकस्मिक प्रेक्षक का भी ध्यान आकर्षित करने में असफल नहीं होता है।''

अन्य विद्वान् कहते हैं, ''हम यह कहने के लिए साहसी हो सकते हैं कि अहिंसा का धर्म, जैनधर्म सम्भवतया उतना ही प्राचीन है, जितना वैदिकधर्म, यदि प्राचीनतर नहीं। कोई संदेह नहीं है कि अहिंसा का धर्म उतना ही प्राचीन था, जितने स्वयं वेद था।''

एक अन्य महत्त्वपूर्ण चिंतक भी पाते हैं, ''वेदों और पुराणों में जैनधर्म के अनगिनत उल्लेखों के अतिरिक्त, एक अन्य साधारण तथ्य दर्शाता है कि जैनदर्शन उतना ही प्राचीन है, जितना हिन्दूदर्शन। अध्यात्म विद्या के विकास के प्रारम्भिक युग का लक्षण है कि गुणों की श्रेणी परिभाषित नहीं है। उदाहरण के लिए वेदान्त में ब्रह्मा को उनके स्वाभाविक गुणों की तरह सत्ता, ज्ञान और सुख (सत्, चित्, आनंद) का धारक नहीं बताया है, लेकिन वह स्वयं ही सत्तागम्य, ज्ञानमय और आनन्दस्वरूप है (सच्चिदानंद)। जैन अध्यात्म विद्या में भी समान ही वर्णन है। वह धर्म और अधर्म को गुण की बजाय आधार मानता है, जिससे आत्मा सम्पर्क में आता है। अन्य तथ्य है उसकी नायक पूजा, पूर्णता प्राप्त मनुष्यों की देवतातुल्य पूजा। और ऐसी पूजा सभी पुरातन धर्मों से विलक्षण है। अन्ततः उनकी सर्वचैतन्यवादी मान्यता, पुनः एक पुरातन भाव है।''

वास्तव में जैसा डॉ. एडवर्ड थोमस जैनधर्म की सरलता और अत्यधिक प्राचीनता के विषय में कहते हुए टिप्पणी करते हैं, ''मूलभूतरूप से अधिक सरल मान्यता अधिक जटिल मान्यता के पूर्वज के रूप में मुख्यतया स्वीकारनी चाहिये।'' मेजर जनरल फोरलोंग पूछते हैं, ''जैनधर्म से अधिक सरल और क्या हो सकता है, चाहे वह पूजा, रीति-रिवाज़ या नैतिकता में ही क्यों न हो।''

सम्पूर्ण परिस्थितियों का पुनरवलोकन करते हुए प्रो. एम. एस. रामास्वामी अयंगर उद्धृत किये जा सकते हैं, जो कहते हैं ''प्राचीन भारतीय इतिहास के वैज्ञानिक छात्र के लिए जैनों के इतिहास का प्रारम्भ जैनधर्म के संस्थापक माने जानेवाले महावीर के समय से होता है। मान्यता के उद्भव से सम्बन्धित इस विचार ने दुर्भाग्यवश विद्वानों को यह मानने के लिए प्रेरित किया कि जैन परम्परा और साहित्य इतिहास के पुनर्निर्माण के लिए अविश्वसनीय और अनुपयोगी हैं।

उनमें से कम जानकर यहाँ तक कहने लगे कि जैनधर्म बौद्धधर्म की एक शाखा मात्र है, साधारणतया क्योंकि महावीर और बुद्ध के जीवन की कुछ घटनाएँ संयोग से समान हैं। इस विषय के लेखकों में से शायद अधिक जानकार डॉ. हॉइर्निल भी सच्चाई के निकटतर नहीं थे, जब उन्होंने कहा कि कोई भी संप्रदाय अपने नैतिक नियमों की मौलिकता के विषय में दावा नहीं कर सकता है, लेकिन ब्राह्मण तपस्वी उनके आदर्श थे, जिसमें से उन्होंने कई महत्त्वपूर्ण परम्पराएँ और संस्थान उधार लिए थे (वाईड हॉइर्निल्स प्रेसिडेन्शियल ऐड्रेस, सीएएस, 1898)। यद्यपि जैनों और उनके पवित्र साहित्य के वर्तमान ज्ञान के साथ, यह सिद्ध करना कठिन नहीं है कि बौद्धधर्म या ब्राह्मणधर्म की शाखा होने से दूर जैनधर्म भारत के प्राचीनतम घरेलु धर्मों में से एक था। ब्राह्मण व्यवधान के बिना जैनों की सरल भक्ति और उनकी घरेलु प्रार्थना न केवल उनकी अत्यधिक प्राचीनता, बल्कि जो अधिक महत्त्वपूर्ण है, उनके अस्तित्व के स्वतंत्र स्वभाव को सिद्ध कर सकती है। और एफ. डब्ल्यु. थॉमस के अनुसार, ''दूसरी तरफ जैनधर्म ने (अर्थात् बौद्धधर्म आदि के विपरीत) अपनी अखण्डता को हिन्दुधर्म से घिरे होने पर भी एक पृथक् संसार की तरह वर्तमान समय तक संरक्षित किया है।''

कुछ न्यायिक अधिकारियों को उद्धृत करने के लिए, टी. एन. शेषगिरि अैयर (एम. एल. ए.) पूर्व न्यायाधीश, मद्रास हाईकोर्ट कहते हैं ''मेरी इच्छा नहीं है कि जैनधर्म को वेदों के आगामी समय का निर्धारित करूँ, यह उनका समकालीन हो सकता है। जैन हिन्दु मतान्तर नहीं है। मैं पूर्णरूप से इस तथ्य का समर्थन कर सकता हूँ कि सभी जैन वैश्य नहीं हैं। वे सभी जातियों और वर्गों से हैं।''

महामहिम जस्टिस कुमारस्वामी शास्त्री, मुख्य न्यायाधीश, मद्रास हाईकोर्ट कहते हैं, ''मैं मानना चाहूँगा कि आधुनिक शोध ने

स्पष्ट किया है कि जैन हिन्दु मतान्तर नहीं है, लेकिन जैनधर्म का मूल और इतिहास है, जो हिन्दु नियम और प्रथा के प्रसिद्ध अधिकृत स्मृति और टीकाओं तक सुदूर पूर्वकाल का है। वास्तव में जैन तीर्थङ्करों में अन्तिम महावीर बुद्ध के समकालीन थे और लगभग 527 ई. पूर्व में दिवङ्गत हुए (मोक्ष प्राप्त किया)। जैनधर्म कई पूर्व तीर्थङ्करों का उल्लेख करता है और इसमें कोई संदेह नहीं कि जैनधर्म ईसापूर्व कई शताब्दियों से एक पृथक् धर्म की तरह फल-फूल रहा था। वास्तव में जैनधर्म वेदों की प्रामाणिकता को अस्वीकार करता है, जिससे हिन्दुधर्म की आधारशिला बनी है और हिन्दु जिसे आवश्यक मानते हैं, उन कुछ अनुष्ठानों के महत्त्व को नकारता है।''

बॉम्बे हाईकोर्ट के न्यायाधीश श्री रंगनेकर कहते हैं, ''यह सत्य है कि जैन वेदों के शास्त्रीय चरित्र को अस्वीकार करते हैं और अंतिम संस्कार अनुष्ठान, श्राद्ध सम्पादन और दिवङ्गत आत्मा की मुक्ति के लिए भोग चढ़ाने से सम्बन्धित ब्राह्मण सिद्धान्त को नामंजूर करते हैं। उनमें ऐसी कोई मान्यता नहीं है कि जातक अथवा दत्तक पुत्र के द्वारा पिता को आध्यात्मिक लाभ प्राप्त होता है। ब्राह्मण हिन्दुओं के मृतकों के प्रति व्यवहार में से मृतशरीर को जलाने अथवा दफनाने के बाद सभी अन्तिम संस्कारों को छोड़ देने से भी वे भिन्न हैं। अब यह सत्य है, जैसा कि बाद के ऐतिहासिक शोधों ने प्रमाणित किया कि ब्राह्मणवाद के अस्तित्व में आने से अथवा हिन्दुत्व में परिवर्तित होने से बहुत पहले जैनधर्म इस देश में चारों ओर फैला हुआ था। यह भी सत्य है कि देश में बहुमत बनानेवाले हिन्दुओं के साथ दीर्घकालीन साहचर्य होने के कारण ब्राह्मण धर्म से सम्बन्धित और हिन्दुओं के द्वारा कठोरता से पाले जानेवाले कई रिवाज और धार्मिक अनुष्ठान तक जैनों ने ग्रहण किये।''

अन्त में स्वाधीन भारत के प्रथम प्रधान पं. जवाहरलाल नेहरु

जोर देकर कहते हैं, ''जैनधर्म और बौद्धधर्म निश्चितरूप से न हिन्दुधर्म और न ही वैदिक धर्म ही थे, तथापि वे भारत में जन्मे थे और भारतीय जीवन, संस्कृति एवं दार्शनिक विचार के अभिन्न अङ्ग थे। भारत का जैनधर्म अथवा बौद्धधर्म शत प्रतिशत भारतीय विचार एवं सभ्यता का परिणाम है, फिर भी इनमें से कोई भी हिन्दु नहीं है। अतः भारतीय संस्कृति को हिन्दु संस्कृति के नाम से पुकारना भ्रामक है।''

अतः यह बहुत आश्चर्यकारी प्रतीत होता है कि अभी भी कुछ लोग हैं और उनमें से कुछ प्रसिद्ध विद्वान् भी हैं, जो जैनधर्म की प्राचीनता और स्वतंत्र प्रकृति के बारे अभी भी में संदेह रखते हैं। जैसा कि प्रो. एस. श्रीकांत शास्त्री कहते हैं, ''कुछ इतिहासविदों के कथनों को स्वीकारने का चलन हो गया है कि बौद्धधर्म की तरह जैनधर्म भी वैदिक आर्यों की बलिप्रथा की प्रतिक्रिया का प्रतिनिधित्व करता है और जैनधर्म के मामले में कई विद्वान् इस मत के इतिहास को पार्श्वनाथ से पूर्व लगभग 9वीं शती ई. पू. तक ले जाने के इच्छुक नहीं हैं।''

लेकिन जैसा डॉ. जैकोबी ध्यान आकर्षित करते हैं, ''पार्श्वनाथ जैनधर्म के संस्थापक थे, इसमें कुछ भी सिद्ध करने योग्य नहीं है। जैनपरम्परा प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव को अपना संस्थापक बनाने के लिए एकमत है। यहाँ उन्हें प्रथम तीर्थङ्कर बनानेवाली परम्परा के विषय में मैं कुछ ऐतिहासिक हो सकता हूँ।''

डॉ. ए. एन. उपाध्ये (एम. ए., डी. लिट्.) कहते हैं, ''व्यावहारिक दृष्टि को लेते हुए ऋषभदेव, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर इत्यादि जैन तीर्थङ्कर संसार के कुछ महानतम गूढ़वादी रहे हैं। यह उल्लेख करना रोचक होगा कि भागवत में वर्णित ऋषभदेव

व्यावहारिक और मौलिक दृष्टि से जैनपरम्परा के द्वारा लिखित विवरण से मान्य हैं।''

प्रो. आर. डी. रानाडे ऋषभदेव के गूढ़वादी जीवन का विवरण देते हुए जैनों के इस प्रथम तीर्थङ्कर को सही तरीके से प्रकट करते हैं, ''एक और अलग प्रकार का गूढ़वादी जिसका शरीर के प्रति पूर्णरूपेण असावधानता ही उसके भागवत् साक्षात्कार का सर्वोत्कृष्ट चिह्न है।''

डा. एस. सी. विद्याभूषण- ''जैनधर्म स्वयं ही सृष्टि के प्रारम्भ तक पीछे पहुँचता है। मुझे जोर देकर कहने में कोई संदेह नहीं है कि वेदान्त और अन्य सिद्धान्तों से जैनदर्शन अधिक पूर्वकालिक है।''

डा. एन. एन. बासु- ''संभवतः ऋषभदेव लेखन की कला को खोजने में प्रथम थे। प्रतीत होता है कि उन्होंने ब्रह्मविद्या के प्रचार-प्रसार के लिए ब्राह्मी लिपि का आविष्कार किया और यही कारण है कि वे 8 वें अवतार के रूप में जाने गए। वे भारतीय शासक नाभिराज की रानी मरुदेवी से जन्मे थे और भागवत में 22 अवतारों में से 8वें के रूप में उल्लिखित हैं।''

डा. सर राधाकृष्णन भी दृढ़तापूर्वक कहते हैं कि ''भागवत पुराण इस धारणा का समर्थन करता है कि ऋषभ जैनधर्म के संस्थापक थे। साक्ष्य हैं, जो दिखाते हैं कि बहुत पीछे लगभग ई. पू. प्रथम शताब्दी में भी प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव को पूजनेवाले लोग मौजूद थे। इसमें कोई संदेह नहीं है कि वर्द्धमान अथवा पार्श्वनाथ से पूर्व भी जैनधर्म चारों ओर फैला हुआ था। यजुर्वेद तीन तीर्थङ्करों के नामों का उल्लेख करता है- ऋषभ, अजितनाथ और अरिष्टनेमि।''

ऋग्वेद के मंत्रों में उसके प्राचीनतम टीकाकार कात्यायन

अपनी सर्वानुक्रमणिका में, सद्गुरु शिष्य अपनी वेदार्थदीपिका में, सायण अपने भाष्य में, (ये) सभी ऋषभ पद को व्यक्तिगत नाम के रूप में स्वीकार करते हैं, परन्तु वे नामित व्यक्ति का विशेष विवरण प्रस्तुत नहीं करते हैं।

डा. सर राधाकृष्णन यद्यपि मानते हैं कि वैदिक उल्लेखों का स्पष्टरूप से आशय विशिष्ट जैन तीर्थङ्करों से है।

जैसे-तैसे यह पूर्णतः स्पष्ट है कि मंत्रों में उल्लिखित नाम से तात्पर्य ऋषभ नाम के एक महान् पुरुष से है। और अभी तक समान नामवाले किसी अन्य महान् पुरुष का कोई भी संकेत उपलब्ध नहीं है, यह कैसे कहा जा सकता है कि उल्लिखित महापुरुष जैन तीर्थङ्कर भगवान् ऋषभ नहीं हैं।

अन्य विख्यात वैदिक विद्वान् स्वामी वी. पी. वादियार वेदरत्न भी स्पष्टरूप से अपना मत प्रस्तुत करते हैं कि उल्लिखित पुरुष कोई अन्य नहीं है, बल्कि जैन तीर्थङ्कर भगवान् ऋषभदेव ही हैं।

कई प्रामाणिक संस्कृत और हिन्दी के शब्दकोश भी शब्द ऋषभ का अर्थ प्रथम जैन तीर्थङ्कर का नाम ही करते हैं। यजुर्वेद, सामवेद और वैदिक साहित्य की अन्य शाखाएँ भी उनके नाम का उल्लेख करती हैं।

इसके अलावा वेदों के टीकाकार स्वयं ही आग्रहपूर्वक कहते हैं कि पुराणों में वर्णित परम्पराओं की सहायता से वैदिक परम्पराओं का स्पष्टीकरण होना चाहिये और हम जानते हैं कि ऋषभदेव का वर्णन, जैसा कि आदिपुराण, हरिवंशपुराण आदि जैन पुराणों में दिया गया है, उपलब्ध अधिकाधिक ब्राह्मणिक पुराणों के वर्णन से पूर्णतः समान है। भागवत के टीकाकार पं. ज्वालाप्रसाद मिश्र निश्चितरूप से जोर देकर कहते हैं कि ''अवतार भगवान् ऋषभ नाभि और

मरुदेवी के पुत्र और भगवान् अग्निध्र (मनु के पौत्र, ब्रह्मा के पुत्र) के पौत्र थे, उन्होंने योग का अभ्यास किया, महान् ऋषियों के द्वारा उन्हें श्रद्धाञ्जलि अर्पित की गई और उन्होंने जैनधर्म का प्रचार–प्रसार किया।

वास्तव में विभिन्न परम्पराओं के मध्य जैनधर्म के संस्थापक ऋषभ होने के विषय में यह स्वीकृति इतनी विलक्षण और प्रभावशाली है कि इसकी वैधता पर सन्देह नहीं किया जा सकता है। जैसा कि प्रो. स्टीवेनसन कहते हैं कि ''जैनों और ब्राह्मणों में सहमति इतनी कभी–कभार होती है कि मैं नहीं समझता कि इस विषय में हम उनकी धारणा को कैसे अस्वीकृत करें, अन्य किस स्थान पर वे इस प्रकार सहमत होते हैं।''

अतः संक्षेप में बैरिस्टर चम्पतराय के शब्दों में, ''हिन्दुधर्म ने स्वयं ही जैनधर्म की प्राचीनता और हिन्दुओं द्वारा विष्णु के अवतार के रूप में माने जानेवाले जैनधर्म के संस्थापक ऋषभदेव को हमेशा स्वीकार किया है और कभी भी विवाद नहीं किया है। वे पुराणों में उल्लिखित हैं, जो उनकी ऐतिहासिकता को प्रश्नों के परे रखते हैं। उनकी माता का नाम मरुदेवी और उनके पुत्र का नाम भरत बताते हैं, जिसके कारण ही पूर्वकाल में भारत को भारतवर्ष नाम से पुकारा जाता था। भागवत पुराण के अनुसार ऋषभदेव विष्णु के अवतारों में 9वें थे और अवतार के रूप में माने जानेवाले वामन, राम, कृष्ण आदि से क्रम में पूर्ववर्ती हैं। अब क्योंकि गणना क्रम में पन्द्रहवें वामन अवतार का विशेषरूप से उल्लेख ऋग्वेद में किया गया है, इसका तात्पर्य है कि उल्लेखयुक्त मंत्रों की रचना की अपेक्षा समय की दृष्टि से वह पूर्व का होना चाहिये और जितना अधिक ऋषभदेव वामनावतार से क्रम में पूर्व हैं, उतना अधिक पहले वे मौजूद थे।''स्वामी कर्मानन्द भी वैदिक साहित्य के अपने तलस्पर्शी और तुलनात्मक अध्ययन

से सफलता–पूर्वक सिद्ध करते हैं कि पृथ्वी पर धर्म के प्रथम प्रचारक ऋषभदेव थे। यहाँ तक कि ईसा से कई शताब्दी पूर्व के शिलालेखीय प्रमाण भी इस विचार का पर्याप्त रूप से समर्थन करते हैं।

अब ये ऋषभदेव भारतीय क्षत्रियों का कुलीनतम और सर्वाधिक प्राचीन इक्ष्वाकुवंश के प्रारम्भकर्त्ता थे, जिसमें से बाद में सूर्य और चन्द्रवंश प्रस्फुटित हुए। ऋषभ स्वयं ही भारत के सर्वाधिक आदिकालीन और नैसर्गिक वंश मानव से सम्बन्धित हैं। उनके पिता और कई अन्य प्रसिद्ध पूर्वज, साथ ही वे स्वयं भी मनु कहलाते थे। अन्य जातियाँ जो भारत में उनके समय से लेकर प्रकट होना शुरू हुईं, वे रक्ष, यक्ष, नाग, फणी, गन्धर्व, किन्नर, वानर आदि विद्याधरों के साधारण नामों पर प्रचलित हुईं। विभिन्न प्रकार की कला, शिल्प, आभियान्त्रिकी और ऐसी ही अन्य वैज्ञानिक साहसिक कार्यों में अनिवार्य कुशलता प्राप्त थी। आधुनिक विद्वान् साधारणरूप से इन लोगों को जातिगत नाम द्रविड़ से पुकारना पसंद करते हैं। ऋषभ ने अपना धर्म समानरूप से मानव और विद्याधर दोनों को प्रदान किया। उनका पुत्र भरत भारत का प्रथम सम्राट् था और उसके नाम पर ही यह देश भारतवर्ष नाम से जाना गया और उसके वंशज भारत नाम से जाने गए। इससे पहले यह पृथ्वी अजनाभ अथवा हिमवर्ष नाम से जानी जाती थी। प्रथम भारतीय नगर अयोध्या ही ऋषभ का जन्मस्थल और भरत की सरकार का बैठक–स्थल था। गजपुर (बाद में हस्तिनागपुर नाम से विख्यात) और कुछ अन्य नगर और राज्य शीघ्र ही अस्तित्व में आए।

यद्यपि कुछ विद्वान् अभी भी मानना पसंद करते हैं कि पुरुवंशी सर्वदमन अर्थात् हस्तिनागपुर का भरत, दुष्यन्त और शकुन्तला (कालिदास द्वारा प्रसिद्ध) का पुत्र ही देश के इस नाम के लिए जिम्मेदार है।

लेकिन यह दर्शाने के लिए पर्याप्त प्रमाण हैं कि शकुन्तला के इस पुत्र के जन्म से पूर्व, इतना ही नहीं, बल्कि उसके वंश के जनक पुरु के भारत आगमन से भी पूर्व यह देश भारतवर्ष कहलाता था और इसके मूल निवासी भारत कहलाते थे। न केवल जैनपरम्परा बल्कि लगभग सम्पूर्ण ब्राह्मणिक पुराण इस तथ्य की घोषणा करते हैं कि वह नाभिपुत्र ऋषभ का पुत्र भरत ही था, जिसके नाम पर इस देश को भारत कहा जाता था। इस तथ्य के उल्लेख वेदों और वैदिक साहित्य की अन्य शाखाओं में भी उपलब्ध हैं। प्रो. जे. सी. विद्यालंकार कहते हैं, ''हम यह सोचने के लिए मजबूर हैं कि हमारे देश का नाम भारतवर्ष इस भरत (शकुन्तला और दुष्यन्त का पुत्र) के कारण था, लेकिन इस नाम का श्रेय एक अन्य अधिक पूर्ववर्ती ऋषभपुत्र राजा भरत को जाता है, जो एक पौराणिक व्यक्ति अथवा कोई प्रागैतिहासिक पुरुष हैं।'' किसी अन्य प्रकरण में वे कहते हैं, ''उन जैन तीर्थङ्करों में प्रथम ऋषभदेव थे, जिनके पुत्र भरत के नाम पर यह देश भारतवर्ष नाम से जाना गया।'' अतः यहाँ कोई भी कारण नहीं है कि इस परम्परा की सचाई और भगवान् ऋषभ के पुत्र भारतीय राजा सम्राट् भरत की ऐतिहासिकता पर संदेह किया जा सके, जो विश्व का विजेता और संसार का शासक था, विशेषरूप से तब, जब विभिन्न परम्पराओं के द्वारा उसका अस्तित्व अच्छी प्रकार से पुष्ट है।

तथ्य के रूप में भारत के हिन्दुओं का इतिहास साधारणरूप से आर्यों के इस देश में आगमन से प्रारम्भ किया जाता है, ठीक जैसे कि भारत के अंग्रेजों अथवा यूरोपियों का इतिहास एलेक्जेंडर के आक्रमण से प्रारम्भ किया जाता है। और इसलिए ही वैदिकधर्म और संस्कृति के घेरे से बाहर अथवा पूर्व की सभी घटनाओं और पुरुषों को अनैतिहासिक अथवा श्रेष्ठ होने पर प्रागैतिहासिक माना जाता है। वेदों में प्राचीनतम और प्रथम ऋग्वेद है और संसार के पुस्तकालय

में यह सबसे पुरानी पुस्तक मानी जाती है। पूर्वी और पश्चिमी दोनों प्रकार के विद्वानों के बहुमत के द्वारा माना जाता है कि इस वेद का निर्माण कभी 4500 ई. पू. और 2000 ई. पू. अथवा 1500 ई. पू. के मध्य लम्बी अवधि में प्रचलित अलग-अलग मन्त्रों के रूप में हुआ है। भारत की उत्तर-पश्चिमी सरहदों से वैदिक आर्यों के आगमन का काल भी लगभग 3500 से 2500 ई. पू. निर्धारित किया जाता है। भगवान् ऋषभ और उनका पुत्र महान् सम्राट् भरत स्पष्टरूप से इन समयों से अधिक पहले के हैं। प्रो. एस. श्रीकांत शास्त्री जैनपरम्परा की प्राचीनता को कम से कम 20,000 ई. पू. तक ले जाते हैं और जोर देकर कहते हैं कि जैनधर्म का वास्तविक निवास-स्थल निश्चितरूप से भारतवर्ष में ही कहीं पर था, हालांकि इस ही समय वे यह मानने का रुझान रखते हैं कि वेदों की बलि प्रथा का प्रारम्भ होने से पूर्व जैनधर्म देशी आर्यों की संस्कृति का दृष्टिकोण मात्र था।

मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की प्रागैतिहासिक सिन्धुघाटी सभ्यता की युगनिर्मापक खोज जैनधर्म की प्राचीनता पर एक नवीन और महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालता है। सर जान मार्शल जोरदार ढंग से कहते हैं कि ''सिन्धु और वैदिक संस्कृतियों की तुलना निर्विवादरूप से दर्शाता है कि वे संस्कृतियाँ असम्बद्ध थीं। वैदिकधर्म साधारणरूप से मूर्तिपूजक नहीं है। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के घरों में अग्निकुण्ड स्पष्टरूप से गायब है।'' मोहनजोदड़ो में कई नग्न आकृतियाँ खोजी गई हैं, जो श्रेष्ठ पुरुषों को प्रदर्शित करती हैं, जो योगियों के अलावा अन्य नहीं हैं।'' और नग्नता जैन श्रमणों के लक्षणों में से एक रहा है। भगवान् ऋषभ स्वयं नग्न हो गए थे और उनकी प्रतिमाएँ भी ऐसी ही बनाई जाती हैं। यहाँ तक कि ऋक्संहिता में ''मुनयः वातवसनाः- वायु लपेटे हुए कुँवारे योगियों'' का उल्लेख है। डा. ए. वैबर के

अनुसार वे जैन तपस्वियों के अलावा अन्य नहीं है, जो ''एलेक्जेंडर महान् के समय के भारतीय जिमनोसोफिस्ट (भ्रमणकारियों?) के प्रसिद्ध विवरणों में भी उल्लिखित प्रतीत होते हैं।''

अब मोहनजोदड़ो की इन नग्न योगिक आकृतियों के बारे में यह कहा जाता है कि ''ये मूर्तियाँ स्पष्टरूप से संकेत करती हैं कि सिन्धुघाटी के लोग ताम्रपाषाण युग में न केवल योग का अभ्यास करते थे, बल्कि योगियों की प्रतिमाओं को पूजते भी थे।'' आर. बी. प्रो. रामप्रसाद चंदा कहते हैं, ''कुछ सिन्धु मोहरों में उत्कीर्ण न केवल बैठे हुए देवता योगमुद्रा में हैं और उस दूरवर्ती काल में सिन्धुघाटी में योग के फैलाव के साक्ष्य योग की कायोत्सर्ग मुद्रा को दिखाते हैं।'' उससे आगे ''कायोत्सर्ग मुद्रा विशिष्टरूप से जैनों की है। यह मुद्रा बैठे हुए की नहीं है, बल्कि खड़े हुए की है। आदिपुराण, पुस्तक 18 में कायोत्सर्ग मुद्रा का वर्णन ऋषभ अथवा वृषभ की तपस्या के सम्बन्ध में है। कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हुए जैन ऋषभ की प्रतिमा, ऐसी ही चार प्रतिमाओं को एक शिला में दर्शाते हुए ईसा की द्वितीय शताब्दी में समावेशित करने योग्य कर्जन पुरातत्त्व संग्रहालय, मथुरा में चित्र क्र. 12 में प्रदर्शित है। प्रारम्भिक राजवंशों के समय की मिस्र की शिल्पकलाओं में बाजुओं को दोनों तरफ लटकाए हुए खड़ी मूर्तियाँ शामिल हैं। लेकिन यद्यपि ये प्रारम्भिक मिस्र की मूर्तियाँ और पुरातात्त्विक यूनानी कोरोई (?) लगभग समान मुद्रा दर्शाती हैं, तथापि उनमें परित्याग की भावना की कमी है, जो सिन्धु मोहरों की खड़ी आकृतियों और कायोत्सर्ग मुद्रा में जैनों की प्रतिमाओं का चित्रण करती हैं। ऋषभ नाम का अर्थ बैल है और बैल ही जैन ऋषभ का चिह्न है।''

प्रो. प्राणनाथ विद्यालङ्कार कहते हैं, ''पट्टिकाओं में जोड़े गए

नाम और चिह्न हिन्दुओं और जैनों की प्राचीन धार्मिक संस्कृति का सिन्धु लोगों की संस्कृति के साथ सम्बन्ध को उजागर करते हुए प्रतीत होंगे। यह भी रेखाङ्कित किया जा सकता है कि मेरी समझ के अनुसार सिन्धु मोहर क्र. 449 पर लेख जिनेश्वर अथवा जिनेश पढ़ा जाता है।'' वे इस मत के भी हैं कि सिन्धु लोग श्री, ह्री, क्लीं इत्यादि ऐसे तान्त्रिक देवताओं को पूजते थे, जो प्रसंगवश जैन पंथियों के महत्त्वपूर्ण स्त्री देवता हैं। आगे वे कहते हैं, ''यह रेखाङ्कित करना रोचक है कि पुराण और जैन धार्मिक पुस्तक दोनों ही (सिन्धु लोगों के) इन देवताओं को उच्च स्थान प्रदान करते हैं।''

उस दूरवर्ती काल में सिन्धुघाटी में जैनधर्म के अस्तित्व के कई अन्य साक्ष्य हैं, जैसे कि सिर और गर्दन को ढके हुए तपस्वियों की आकृतियाँ, जो सातवें तीर्थङ्कर सुपार्श्व को प्रदर्शित कर सकती हैं और अन्य भी। प्रो. एस. श्रीकान्त शास्त्री कहते हैं, ''ई.पू. 3000-2500 की, नग्नता और योग की अपनी संस्कृति के साथ, बैल और अन्य चिह्नों को पूजनेवाली सिन्धुसभ्यता की जैनधर्म से समानता है और इसलिए सिन्धु सभ्यता आर्य अथवा वैदिक आर्य मूल की नहीं मानी जाती है।'' क्योंकि माना जाता है कि जैनधर्म अनार्य अथवा कम से कम प्राक् वैदिक आर्य मूल का है।

यद्यपि प्रो. हुमायूँ कबीर के शब्दों में ''कुछ विद्वान् रहे हैं, जो मोहनजोदड़ो के पूर्णरूप से प्राक् वैदिक संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने में संदेह करते हैं। वे मानते हैं कि आर्यों का वास्तविक घर भारत था और मोहनजोदड़ो आर्य संस्कृति के विकास का प्रारम्भिक स्तर मात्र था।'' फिर भी विद्वानों की साधारण प्रवृत्ति इस सिद्धान्त के पक्ष में रही है कि सिन्धु लोग द्रविड वंश परम्परा के थे। आदरणीय फादर डॉ. हीरास जोरदार ढंग से इस मान्यतावाले हैं कि मोहनजोदड़ो लोग द्रविड थे, कि उनके शिलालेखों की भाषा विशुद्धरूप

से द्राविडी भाषा थी और उनकी संस्कृति, धर्म इत्यादि भी द्राविडी था।

उनके अनुसार केकड़ों की धरती, नान्दुर मोहनजोदड़ो का पुरातन नाम था। वे मानते हैं कि नान्दुर लिपि लेखन पर मनुष्य का प्रथम प्रयास था और नान्दुर अथवा मोहनजोदड़ो सभ्यता प्राक् राजवंशीय मिस्त्र की सभ्यता से भी प्राचीनतर थी और सम्भवतः मनुष्य की प्राचीनतम सभ्यता थी। इस सभ्यता का स्तर ताम्रपाषाण कहलाता है, लोहा अभी तक ज्ञात नहीं था। सर जान मार्शल के अनुसार यह सभ्यता ''भारत की मिट्टी पर लम्बे पूर्वकालिक इतिहास को अवश्य रखती है, हमें ऐसे युग तक ले जाती है, जिसका धुंधलेरूप से मात्र अंदाजा लगाया जा सकता है और उसे आवश्यकरूप से मध्यउत्तरी भारत की तत्कालीन बहिन अथवा माता सभ्यता के साथ जुडा होना चाहिए (अर्थात् अयोध्या-हस्तिनापुर क्षेत्र)। प्रो. चाईल्डी ने लिखा, ''भारत अपनी पूर्णतः व्यक्तिगत और स्वतंत्र सभ्यता के साथ तीन हजार वर्षों के आस-पास मिस्त्र और बेबीलोनिया का सामना करता आया है, तकनीकीरूप से शेष के समकक्ष है। और साफ तौर पर वह भारतीय मिट्टी में गहरी जमी हुई है। उसने सहन किया है, वह पहले से ही विशेषरूप से भारतीय है और आधुनिक भारतीय संस्कृति की बुनियाद बनाती है।

अतः सर्वाधिक प्राचीन फिर भी अत्यन्त विकसित सिन्धु लोगों की सभ्यता, जिसका विख्यात पुरातत्त्ववेत्ताओं और पुराविदों के द्वारा द्रविड लोगों के रूप में जिक्र किया गया है, रिसले के अनुसार ''जो भारत के प्राचीनतम निवासी हैं, जिनके बारे में हमारे पास कुछ जानकारी है, ''जो वैदिकधर्म के जन्म से बहुत पहले अथवा आर्य सभ्यता के प्रारम्भ से भी पहले, इन लोगों के जैनमत का होने के पर्याप्त प्रमाण प्रस्तुत करती है। ये प्राचीन जैन प्रारम्भिक ब्राह्मणिक

साहित्य में व्रात्य अथवा वृषल कहलाते थे। वे अपने अच्छी प्रकार से बने हुए नगर और अहिंसक, बलिरहित संस्कृति के साथ देशी प्रतिद्वन्द्वी और शत्रु थे, जिनसे प्रथम आर्यों को इस देश में स्थापित होने और फैलने के लिए भिड़ना पड़ा। वास्तव में जैनपरम्परा के अनुसार भगवान् ऋषभ का पुत्र राजकुमार द्रविड़ इस वंश का प्रारम्भकर्त्ता था, जो बाद में द्रविड कहलाने लगे। माना जाता है कि प्राचीनकाल के कई द्रविड राजकुमार जैन साधु बन गए और आज तक भी पूजे जा रहे हैं।

मेजर जनरल जे. जी. आर. फोरलॉन्ग अपने सत्रह वर्षों से अधिक के अध्ययन और शोध के परिणामस्वरूप इंगित करते हैं कि ''लगभग 1500 से 800 ई. पू. और वास्तव में अज्ञात समय से सम्पूर्ण उत्तरी, पश्चिमी, मध्य-उत्तरी भारत तुरानियों के द्वारा शासित था। सुविधाजनकरूप से जो द्रविड कहलाते थे और वृक्ष, सर्प और चिह्न को पूजते थे, परन्तु उस समय सम्पूर्ण उत्तरी भारत में एक प्राचीन और अत्यन्त सङ्गठित धर्म, दर्शन, नैतिक आचार और कठोर तपस्या वाला जैनधर्म मौजूद था, जिसमें से स्पष्टरूप से ब्राह्मणधर्म और बौद्धधर्म के प्रारम्भिक तप की रूपरेखा विकसित हुई। आर्यों के गंगा अथवा सरस्वती तक पहुँचने से बहुत पहले ही 8वीं अथवा 9वीं शताब्दी ई. पू. के तेईसवें बुद्ध पार्श्व से पहले कुछ बाईस प्रसिद्ध बुद्ध, संन्यासी अथवा तीर्थङ्करों के द्वारा जैन शिक्षित हो चुके थे। वह पार्श्व समय के लम्बे अन्तरालों में निवास करनेवाले अपने सभी पूर्वज पवित्र ऋषियों के बारे में और पूर्वों अथवा पुराणों के नाम से विख्यात तत्कालीन कई शास्त्रों के बारे में जानता था। वे प्राचीन हैं, जो कि युगों-युगों से विश्वस्त साधुओं, वानप्रस्थों अथवा वनवासियों की स्मृति को सौंप दिये जाते थे। यह अधिक विशिष्टरूप से एक जैन आदेश है, जो उनके सभी बुद्धों के द्वारा और व्यक्तिगतरूप से 6वीं

शताब्दी ई. पू. में चौबीसवें और अन्तिम तीर्थङ्कर अर्थात् 598–526 ई.पू. के महावीर के द्वारा कठोरता से लागू किया गया। यह संन्यासियों का आदेश ब्राह्मणधर्म और बौद्धधर्म में सम्पूर्ण दूरवर्ती बाकट्रीआ और डाकीआ (?) तक जारी रहा, जैसा कि हमारे अध्ययन ढ्ढ और ''सेकरेड बुक्स ऑफ ईस्ट'' अंक 22 और 45 में देखा जा सकता है। आगे वे कहते हैं, ''जैसा कि पहले अनुमान किया गया था कि बौद्धधर्म की शाखा होने के बजाय जैनधर्म 3000 ई.पू. तक पीछे फैलता हुआ दिखाया गया है। उत्तरी भारत में कठोर जातियों की प्रकृति पूजा के साथ-साथ यह उन्नति करता हुआ पाया गया है।''

एस. एन. गोखले के शब्दों में, ''प्राक् आर्यकाल से चले आ रहे दर्शन जैनधर्म का केन्द्रबिन्दु अहिंसा है।'' डॉ. कालीदास नाग कहते हैं, ''इतिहास को जानने की शपथ लेनेवालों में से भी कोई नहीं जानता है कि बुद्ध से लाखों और करोड़ों वर्ष पूर्व, न केवल एक अथवा दो बल्कि कई जैन तीर्थङ्करों ने अहिंसा की शिक्षा का उपदेश दिया था। जैनधर्म बहुत प्राचीन धर्म है और इसने भारतीय संस्कृति को बहुत कुछ प्रदान किया है।'' डॉ. जैकोबी भी इस मतवाले थे कि जैनधर्म भारत के प्रारम्भिक दर्शन से सम्बन्धित था। भारतीयों के द्वारा आण्विक सिद्धान्त के विकास पर बोलते हुए एक अन्य विख्यात विद्वान् कहते हैं, ''जैसा कि उपनिषदों में संरक्षित है, ब्राह्मणों की प्राचीनतम दार्शनिक परिकल्पना में हम आण्विक सिद्धान्त का लेश भी खोज नहीं पाते हैं, और इसलिए ही उपनिषदों की शिक्षाओं की व्यवस्थित रूप से व्याख्या करने का दावा करनेवाले वेदान्त सूत्र में इसका खण्डन किया गया है। सांख्य और योग दर्शन में भी इस नहीं स्वीकारा है, जो कि परम्परागत होने का अगला दावा करते हैं अर्थात् वेदों से अच्छा सम्बन्ध बनाये हुए हैं, क्योंकि वेदान्त सूत्र तक उन्हें स्मृति इस शीर्षक की अनुमति देता है। लेकिन

आण्विक सिद्धान्त वैशेषिक का आवश्यक भाग बनाता है और न्याय के द्वारा स्वीकार किया गया है, ये दोनों ब्राह्मणिक दर्शन हैं, जो दिव्य अथवा धार्मिक लोगों के बजाय लौकिक विद्वानों (पंडितों) के द्वारा उत्पन्न हुए हैं। भिन्नतावादियों में से, यह जैनों और आजीवकों के द्वारा भी गोद लिया गया है। हम जैनों को प्रथम स्थान पर रखते हैं, क्योंकि वे पदार्थ के बारे में अत्यन्त प्रारम्भिक विचारों से अपनी व्यवस्था का हल निकालते हुए प्रतीत होते हैं।'' यह बात जैनों के कर्मसिद्धान्त के बारे में, जो कि उनके स्वयं के आण्विक सिद्धान्त पर आधारित है, उनकी सर्वचेतनावादी मान्यता और नायकपूजा के बारे में भी समानरूप से सत्य है।

प्रो. जी. सत्यनारायण मूर्ति ने 1916 में लिखा कि ''जैनधर्म भारतीय चिन्तन के प्राचीन विद्यालयों के देशी उत्पाद के रूप में प्रतीत होता है। जो कुछ भी यूरोपीय ख्याति के प्रारम्भिक सावंतों ने कहा है, उसके विपरीत यह ध्यान देने योग्य है कि जैनधर्म अपने धर्म की सम्पूर्ण महिमा और अपने साहित्य की प्रचुरता के साथ, लौकिक और धार्मिक दोनों रूप से अत्यधिक प्राचीनकाल से सौंपा जा रहा है। जैनधर्म के पास उनका स्वयं का इतिहास है। एक इतिहास, जिसके अधिकांश अज्ञात हिस्सों पर भारत और विदेश दोनों में कई विद्वानों के धैर्यपूर्ण शोधों की वजह से प्रायः प्रत्येक वर्ष ताजा प्रकाश डाला जाता है। जैनधर्म के इतिहास के लिए अब कई स्रोत हैं और अपना स्वयं का इतिहास है। अर्थात् एशिआटिक समाज के प्रकाशित विवरण और एशिआटिक शोध- डेविस, नॉक्स, केप्टन माहोनी, हॉगसन, डॉ. बुचानन, प्रो. विलसन, डी ला मैने, डॉ. जैकोबी और व्हूलर और अन्य जैन इतिहासकारों का मेजबान।''

गुस्टॉव ऑपर्ट के अनुसार जैनधर्म-प्रचारक देशी जनसंख्या के

लिए समर्पित प्रथम उपदेशक और धार्मिक शिक्षक थे। सम्भवतः इसलिए ही अधिक व्यक्तिगतरूप से जैनों का मन्दिर पाली कहलाता है।

अन्त में उद्धृत करने के लिए एक और ज्ञानी विद्वान् सर सन्मुखम शेट्टी, ''यह एक बहुत रुचिकर ऐतिहासिक परिकल्पना के रूप में मेरे ध्यान में आई कि भारत में इस महान् धर्म का वास्तविक प्रारम्भ क्या होना चाहिये–उस दृष्टिकोण से इस महान् धर्म को देखते हुए मैं मानने के लिए बाध्य हूँ कि जब आर्यों का आगमन भारत में हुआ और जब वेदों का धर्म पंजाब में उत्पन्न हुआ था, तब जैनधर्म संभवतया भारत में प्रचलित प्राचीनतम धर्म था। मैं सोचता हूँ कि यह भगवान् महावीर के द्वारा छोड़ा गया असाधारण प्रभाव ही था, जिसने वास्तव में भगवान् बुद्ध का निर्माण किया। इस बात में बहुत गहरा महत्त्व है कि भगवान् महावीर और भगवान् बुद्ध समकालीन थे। भगवान् महावीर के द्वारा स्थापित क्रान्ति के आदर्श को ही भगवान् बुद्ध के द्वारा अपनाया हुआ होना चाहिये। महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि महान् हिन्दु सन्तों जो हिन्दुधर्म को दक्षिण भारत में पुनः प्रचलित करना चाहते थे, उनको जैनधर्म का सर्वनाश करने के लिए क्रूर तरीकों का भी आश्रय लेना पड़ा। यह इस मजबूत पकड़ का प्रमाण है, जो जैनधर्म की दक्षिण भारत के लोगों पर रही होनी चाहिये। अद्यतन ऐतिहासिक शोध और पुरातत्त्व विभाग की खोजों ने यह मानने के लिए विद्वानों का मार्गदर्शन किया है कि प्राक् आर्यकाल में भारत में एक बहुत महान् सभ्यता फल-फूल रही थी, जिसे मैं सुविधा के लिए द्रविड़ सभ्यता नाम से पुकारूँगा। मैं सुविधा के लिए इस शब्द का प्रयोग यों ही करता हूँ, क्योंकि इन दिनों में जब हम द्रविड़ सभ्यता और ऐसे ही कुछ वाक्यांशों का प्रयोग करते हैं, तो अनावश्यक गर्मी उत्पन्न हो जाती है और मेरा स्वयं का मानना है कि

जैनधर्म द्रविड़ लोगों का धर्म है, जो कि भारत के प्राक् आर्य मूल निवासी थे। आर्य अपने स्वयं के पूजा-पाठ और पशुबलि पर आधारित विचारों के साथ आए। भगवान् महावीर के समय में पुनः प्रचलन को प्राप्त महत्त्व क्रान्ति की उस भावना का एक संकेत मात्र है, जो इस देश के जैनों के विशाल समूहों में इस नये पन्थ और अभ्यासों के प्रति आई, जो कि जैनों के द्वारा मान्य सिद्धान्तों के प्रतिकूल थे।''

भारत के प्राचीनतम गूढ़वादी चिह्न जैसे स्वस्तिक, त्रिदण्ड (अथवा रत्नत्रय का प्रतीक त्रिशूल), धर्मचक्र (न्याय का चक्र और समय चक्र), नन्द्यावर्त और वर्द्धमानक (अथवा नान्दीपद), वृक्ष, स्तूप, अर्द्धचन्द्र, कमल, पशु जैसे बैल, हाथी, सिंह, केकड़ा, सर्प और कई अन्य प्राचीनतम समयों से ब्राह्मणधर्म और बौद्धधर्म के द्वारा गोद लिए जाने से भी पूर्व और प्रतीक बनाने का प्रचलन होने से भी पूर्व, जैनों के द्वारा साधारणरूप से उपयोग में लाये हुए पाये जाते हैं। और कुछ नवपाषाणकालीन गुफाओं में जैसे कि रायगढ़ राज्य के सिंगनपुर में, जो इन प्राचीन कालों में जैनधर्म के प्रभाव के सुस्पष्ट चिह्नों को धारण करता है, दसों हजार वर्ष प्राचीन कुछ प्रागैतिहासिक चित्रकारियाँ खोजी गई हैं। भारत में पुरापाषाणकालीन और नवपाषाणकालीन लोगों के धार्मिक विचार तक, जो कुछ थोड़ा उनके बारे में ज्ञात है, जैनधर्म के मूलभूत स्वरूप से निकट की समानता रखते हैं। जैसे कि सर्वचेतनावाद, पुनर्जन्म, आत्मा का अस्तित्व और अनन्त स्वभाव, कर्म के जैन सिद्धान्त के समरूप कारण और कार्य का आध्यात्मिक असाधारण तथ्य और कई अन्य। यह दिखाने के लिए भी पर्याप्त प्रमाण हैं कि हिंसारहित केवल शाकाहार पर आश्रित अहिंसक लोग, मांस खानेवाले हिंसक स्वभाववालों के साथ समानरूप से हमेशा मौजूद थे। लाखों वर्ष पुराना माना जानेवाला बहुत प्राचीन प्राक्

राजवंशीय मिस्त्र का धर्म भी जैनधर्म का एकदम सजातीय दिखाई देता है। वास्तव में फोरलॉन्ग के शब्दों में, ''जैनधर्म के प्रारम्भ को खोजना असम्भव है।'' जैनों के अनुसार उनका धर्म अनादिकालीन है, यह ऋषभ से पहले भी अस्तित्व में था और ऋषभ का काल जो वे देते हैं, भी गणना से परे है।

लेकिन वैज्ञानिक इतिहास के कठोर तथ्यों पर वापस आने पर भूगर्भशास्त्रियों, मानवविज्ञानी भूगोलशास्त्रियों और प्राक् इतिहासविदों के अनुसार आदिकालीन हिमयुग का अन्तिम काल लगभग ई. पू. आठ से दस हजार वर्षों में समाप्त हुआ और इसके साथ ही हिमयुगोत्तर का प्रारम्भ हुआ। यह वही समय है, जो क्वार्टनरी युग के नवपाषाणकाल के समापन समय के लिए भी निर्धारित है। यह इस समय के भी निकट है, जब तथाकथित आर्य लोगों का अपने उत्तरध्रुवीय घर से बाहर निकलना शुरू हुआ कहा जाता है। इस समय के ठीक बाद मुख्यरूप से भारत में ताम्रपाषाण युग प्रारम्भ होने को था, जो प्रथम सभ्यता की शुरूआत के लिए चिह्नित है, जैसा कि हम आज उसे समझते हैं। एक रोचक प्रमाण का अंश उत्सुकतापूर्वक भगवान् ऋषभ को ठीक इस समय के आस-पास निर्धारित करता है। एकान्तप्रिय राजदूत मैगस्थनीज, जो कुछ समय के लिए पाटलीपुत्र में रहे, सर्वसम्मतरूप से जैन साधु के रूप में अब स्वीकृत सम्राट् चन्द्रगुप्त के दरबार में, लगभग ई.पू. 305 में लिपिबद्ध करते हैं कि उस समय की प्रचलित देशी संस्कृति भारतीय इतिहास की शुरूआत का काल उस समय से 6462 वर्ष पूर्व से निर्धारित करती थी, उसके अनुसार जब महान् भारतीय डायोनिसस और उसका पुत्र महान् हर्कुलस रहता था। वह इस डायोनिसस को मेरु पर्वत और कैलाश (हेमोडोस) के साथ भी जोड़ते हैं, विभिन्न कला और शिल्प के आविष्कार और खोज, नगरों का निर्माण, राज्यों की स्थापना और

अन्य भी कार्यों का श्रेय उन्हें देता है। वह उन्हें लिनायोस कहता है, क्योंकि उन्होंने खोजा कि रस उत्पन्न करने के लिए फलों को कैसे बटोरा और दबाया जाना चाहिये। उसके समय से पहले, कहा जाता है कि पृथ्वी पर निरन्तर उत्पन्न होनेवाले फलों पर ही मूल निवासी निर्भर थे। उसका पुत्र हर्कुलस एक महान् योद्धा और विजेता था, वह कई पत्नियाँ और अनेक बच्चे रखता था। डायोनिसस 250 वर्षों की लम्बी उम्र तक जीवित था।

अब यह सम्पूर्ण विवरण किसी अन्य नहीं, बल्कि भगवान् ऋषभदेव अथवा आदिनाथ (प्रथम ईश्वर) पर संकेत करता है, जो धर्म के प्रथम प्रचारक, विधि और न्याय के प्रथम प्रकाशक, कला, उद्योग और सामाजिक संगठन के मार्गदर्शक थे। जिसने भोगभूमि (प्रकृति आश्रित प्राचीन जीवन) की समाप्ति पर कर्मभूमि (कर्म और बुद्धि का युग) को उद्घाटित किया। उनके पुत्र प्रथम विश्वविजेता भरत चक्रवर्ती की कई पत्नियाँ और अनेक पुत्र थे। अतः कोई संदेह नहीं है कि यह दो हजार वर्षों से अधिक पुरानी परम्परा निश्चितरूप से भगवान् ऋषभदेव का संकेत करती है, जिनका काल उस परम्परा के अनुसार ई. पू. 6765 अथवा लगभग 9000 वर्ष पूर्व आयेगा। कम से कम यह वह काल है, जो परम्परागतरूप से ई.पू. तृतीय-चतुर्थ शताब्दी में माना जाता था। लेकिन प्रसंगवश यह उपर्युक्त भूगर्भविज्ञान सम्बन्धी आँकड़ों से पर्याप्त मधुरता बनाये हुये है और सर्वाधिक प्राचीन सिन्धुघाटी की सभ्यता की शुरूआत से (ई.पू.6000), प्रारम्भिक मिस्त्र की सभ्यता से (ई.पू. 5000), आर्यों के आगमन से (ई.पू. 3000) भी पर्याप्तरूप से प्राचीन है। और इस प्रकार जैनधर्म सम्पूर्ण प्रागैतिहासिक (प्राक् लिखित इतिहास), पूर्व-ऐतिहासिक और ऐतिहासिक काल में मौजूद पाया जाता है।

मानव का यह प्राचीनतम धर्म मुख्यरूप से साधारणतया धर्म

अथवा मानवधर्म अथवा मग्ग (मार्ग) कहलाता था, सिन्धुघाटी के दिनों में ऋषभ पन्थ अथवा जैनधर्म के रूप में, वैदिक लोगों के द्वारा व्रात्यधर्म अथवा अहिंसा धर्म के रूप में, उपनिषदों के समय में अर्हत्धर्म अथवा आत्मधर्म के रूप में, बुद्ध के समय में निगन्थ धर्म के रूप में, भारत-मिस्त्र और इन्डोसिथियान काल में श्रमणधर्म के रूप में, तथाकथित हिन्दुकाल में जैनधर्म, स्याद्वाद मत अथवा अनेकान्त मत के रूप में, भक्ति आन्दोलन के दिनों में विशेषरूप से डेक्कन में भव्य धर्म के रूप में, राजपुताना में श्रावक धर्म के रूप में, पंजाब में भावदास के धर्म के रूप में और अन्य रूप से भी कहलाता था। सभ्य लोगों की प्राचीनतम और विशुद्धरूप से देशी धार्मिक व्यवस्था होने के अलावा भी, यह एक मात्र धर्म है, जो चमत्कारिक रूप से इतने लम्बे समय तक प्रचलित रहा और वर्तमान समय तक अपनी अखण्डता को सुरक्षित रखा। अपने प्रारम्भ से ही, यह सम्पर्क में आनेवाले सभी धार्मिक व्यवस्थाओं पर क्रिया और प्रतिक्रिया करता रहा है और मानव चिन्तन एवं संस्कृति को प्रभावित करता रहा है। सभी संस्कृतियों के क्षेत्रों में भी इसका सहयोग मामूली अथवा निम्न स्तरीय नहीं है। इसके पास कुलीनतम और अधिक व्यवहार योग्य शान्ति और अच्छाई का विश्वभाईचारे का और जबरदस्त सुख और खुशी का सन्देश, न केवल अपनी जन्मस्थली के लिए बल्कि विस्तृत विश्व के लिए, न केवल एक व्यक्ति के लिए बल्कि सम्पूर्ण मानवजाति के लिए है। डॉ. नाग ने कहा है, ''जैनधर्म किसी एक निश्चित जाति अथवा वर्ग का धर्म नहीं है। लेकिन यह सकल जीवमात्र का धर्म है। यह अन्तर्राष्ट्रीय और सार्वभौमिक है।'' आदरणीय ए. जे. डुबोईस के शब्दों में, ''हाँ! सम्पूर्ण मानवजाति का प्राचीनतम विश्वास अर्थात् उस (जिन) का धर्म ही इस पृथ्वी पर एक मात्र सच्चा है।''

जिनमत की महिमा हो!!!